| | | | |
|---|---|---|---|
| त्रलोक्यं | त्रैलोक्यं | १३॥ | २ |
| कम | कर्म | १३॥ | ४ |
| कुव्भीकरणो | कुब्जीकरणे | १८ | २ |
| प्राण | प्राणः | २० | २ |
| प्रवतते | प्रवर्त्तते | २१॥ | २ |
| तंदड | तदंड | २३ | १ |
| (पहेलीलीटीने) | त्रीजीलीटी समजवी | २४ | |
| तेतद् | पश्य | २४॥ | ३ |
| द्रव्यमरूप्प | द्रव्यमरूपं रूपी | २७॥ | १ |
| (वुद्धिमांथी) | (बुद्धिमांथी)अहंकार अने अहंकारमांथी | २७॥ | ११ |
| चैतन्यमांथी– | चैतन्यमांथी अहंकार अने अहंकारमांथी | २८ | ३ |
| पूव | पूर्वं | २८ | ५ |
| चतन्य | चैतन्य | २८ | ११ |
| दुःस्वा | दुःखा | २९ | ३ |
| वध्यते | बध्यते | ३१ | १ |
| विद्यतं | विद्यते | ३२ | १ |
| जोवोना | जीवोना | ३३॥ | ९ |



# प्रस्तावना

आ ग्रंथना कर्ता **श्रीमान् हरिभद्रसूरि** जेवा धुरंधर आचार्य होवाथी आ ग्रंथनी उत्तमता विषे कांइ विशेष कहेवानुं होय नहि. श्री हरिभद्रसूरिए आ ग्रंथमां प्रथम वक्ता अने श्रोताओनी योग्यता दर्शाव्या बाद तथा आ जगतनुं स्वरूप, आत्मानुं स्वरूप अने कर्मनुं स्वरूप कया कया दर्शनवाळा कया कया प्रकारे माने छे ते सर्व मन्तव्य दर्शाव्या बाद जैन दर्शन ए त्रणेनुं स्वरूप कइ रीते माने छे ते दर्शाववा पूर्वक अन्यदर्शनकारोनुं मन्तव्य केवी रीते युक्तिविकल छे, अने जैनदर्शननुं मन्तव्य कइ रीते यथार्थ छे ते पण युक्ति पूर्वक दर्शाववेलुं छे.

आ ग्रंथना भाषान्तरनो प्रयास अनेक देशमां विहार करवाथी पोताना चारित्रबळ वडे प्रसिद्ध थयेला शान्तस्वभावी मुनिमहाराज **श्रीमद् हंसविजयजी महाराजश्री** के जेओ जैनाचार्य श्रीमद् **विजयानंद सूरीश्वर** उर्फे श्रीमद् **आत्मारामजी महाराजना** मुख्य शिष्य **श्री लक्ष्मीविजयजी महाराजना शिष्य** छे, तेओनी प्रेरणाथी थयेलो छे.

आ ग्रंथने अनुसारे जोवा जतां भाषान्तर बहुज टुंका अर्थवाळुं लखाय ते वास्तविकज छे, कारणके मारी मति अल्प होवा विगेरेना कारणथी आटलो अर्थज लखी शकायो छे. न्यायमां मारो प्रवेश नहि होवाथी तेवे स्थाने जे जे पंडित अथवा शास्त्रीओने पूछी समजीने लखेल छे ते ते पंडित-शास्त्रीओनो आ भाषान्तर कर्ता उपकार माने छे. पूछीने निर्णय करेला स्थानमां तेमज बीजे स्थाने छद्मस्थताने लइने उपयोग शून्यता विगेरेथी थयेली भूल माटे हुं मिथ्यादुष्कृत दउं छुं अने सुज्ञ पुरुषो ते सुधारी वांचशो.

ली: चंदुलाल नानचंद मु० सिनोर, हाल मु० अमदावाद

न्यायांभोनिधिजैनाचार्यं श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरप्रशिष्य श्रीमद् हंसविजयेभ्यो नमोनमः

# श्री लोकतत्त्वनिर्णय ग्रन्थः

( भाषान्तर कर्त्ता पं० चंदुलाल नानचंद. )

जिनेन्द्रवृन्दं जिनशासनं च, श्रीरंकितं हंसमुनिं प्रणम्य
व्याख्यां नृतत्त्वस्य सनिर्णयस्य, वक्ष्येऽनघां गूर्ज्जरया गिरा वै ॥ १ ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं, केवलरूपं जिनोत्तमं भक्त्या । भव्यजनबोधनार्थं, नृतत्वनिगमं प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥आर्या०॥

अर्थः—श्री जिनेन्द्र समान शुद्ध आत्मस्वरुपी बीजुं कोइ नहिं होवाथी एक, अनन्त ज्ञान अनंत दर्शन अने अनंत चारित्रादि अनेक गुणयुक्त होवाथी अनेक, केवळज्ञान अने केवळदर्शनयुक्त होवाथी केवलस्वरुप एवा सर्व जिन एटले सामान्य केवळीओमां श्रेष्ठ श्री जिनेन्द्र-तीर्थंकर भगवानने भक्तिपूर्वक नमस्कार करी भव्य जीवोने प्रतिबोध करवा माटे हुं (हरिभद्र सूरि) लोकसत्वनिगम एटले लोक स्वरूपनो निर्णय कहीश. ॥ १ ॥

भव्याऽभव्यविचारो, न हि युक्तोऽनुग्रहप्रवृत्तानाम् । कामं तथापि पूर्वं, परीक्षितव्या बुधैः परिषद् ॥२॥

अर्थः—उपकार करवाने तत्पर थयेला महात्माओने आ भव्य ( उपदेश योग्य ) छे, अने आ अभव्य छे, एवो विचार करवो योग्य नथी तोपण बुद्धिमानोए प्रथम सभानी परीक्षा तो सारी रीते करवी जोइए.

प्रथम गाथामां "भव्यजन बोधनार्थं" ए वाक्य वडे आचार्ये भव्य जीवने प्रतिबोध करवानुं कह्युं, ते बाबतमां कोइ शंका करे के जगतमां उपकार करनार महात्माओ तो दरेक जीवने उपदेश आपी प्रतिबोध करे तो केवळ भव्य जीवनेज प्रतिबोध करवानुं केम कह्युं ? ए शंकाना समाधानरुपे आचार्य महाराज आ गाथाना उत्तरार्धवडे कहे छे के ए वात जोके ठीक छे तोपण बुद्धिमानोए (आ जीवने उपदेश सफळ थशे के निष्फळ ! तेनो अनुमानथी सारी रीते निर्णय करवानी तीक्ष्ण बुद्धिवाळा महात्माओए ) प्रथम सभानी एटले उपदेश आपवा योग्य जीवोनी परीक्षा तो सारी रीते करवी जोइए. नहितर जे वृक्ष जे जमीनमां उग्याथी फळ न आपी शके ते जमीनमां तेवा वृक्षने वारंवार जळसिंचन करनार माळी जेम स्वकार्यमां निपुण न कहेवाय तेम योग्यायोग्यत्वनो विभाग जाण्या विना उपदेश आपनार आचार्य पण बुद्धिमान न गणाय, एटलुंज नहिं पण सुघरीए वर्षाऋतुमां वर्षादथी व्याकुळ थता वानरने घर बांधवानो उपदेश आपतां वानरे खीजवाइने सुघरीनो ज माळो भागी नाख्यो, तेम अयोग्यने उपदेश आपतां कोइवार आचार्यने पण गेरलाभ थाय. वळी मोक्षसंबंधि उपदेश सिंहणना दूधनी पेठे अयोग्य श्रोतारुप अयोग्य ( सुवर्ण सिवायना बीजा) पात्रमां टकी न शके पण योग्य श्रोतारुप सुवर्णपात्रमांज टकी शके माटे श्रोतानी योग्यता अवश्य जोवी. ॥२॥

वज्रमिवाऽभेद्यमनाः, परिकथने चालनीव यो रिक्तः । कलुषयति यथा महिषः, पूनकवद्दोषमादत्ते ॥३॥
जलमंथनवत् कथितं, बधिरस्येव हि निरर्थकं तस्य । पुरतोऽधस्य च नृत्तं, तस्माद्ग्रहणं तु भद्रस्य॥४॥ युग्मं॥

अर्थः—वज्रनी पेठे न भेदाय एवा हृदयवाळो, उपदेश आपतां पण जे चाळणीनी पेठे खाली होय, पाडानी माफक उपदेशने डोळी नाखे, अने गळणी माफक जे केवळ दोषनेज ग्रहण करे तेवा जीवने कहेलो उपदेश जळ वलोववानी माफक, बहेराने कहेली वातनी माफक अने अंधनी आगळ करेला नाटकनी माफक निरर्थक छे, ते कारणथी उपदेश सांभळवामां भद्र जीवनुं ग्रहण करेलुं छे.

श्री नंदीसूत्रमां मगशैल पाषाण, घट, चाळणी, परिपूर्णक, हंस, महिष, मेंढो, मच्छर, जळो, बिलाडी, जाहक, विप्र, भेरी, अने आभीरी ए १४ जातिना श्रोता कह्या छे, ते संक्षेपमां आ प्रमाणे—

१ मगना दाणा जेवडो नानो पाषाण ते मगशैल पाषाण जेम पुष्करावर्त्त नामना महामेघथी अंदर जरा पण भींजाय नहिं पण उलटो वधु चळकाटवाळो थवाथी जाणे मेघने हसतो होय तेम जे श्रोता महात्माना सेंकडो श्रेष्ट उपदेश सांभळ्या छतां लेश पण असरवाळो न थाय परन्तु उलटो उपदेशकने ज जाणे अज्ञानी मानतो होय एवो मगशैल सरखो श्रोता अयोग्य छे.

२ कहे ते वखत सर्व सांभळे पण पछी कंइ नहि ते छीद्रघट तुल्य, थोडुं संभारे ते खंडघट तुल्य, थोडुं सांभळी तेटलुं संभारे ते कंठहीन घट तुल्य, अने सर्व उपदेश सांभळी सर्व संभारे ते संपूर्ण घट तुल्य श्रोता एमां छीद्रघट स-

लोक. २

रखो प्रथम श्रोता अयोग्य छे, अने शेष त्रण श्रोता अनुक्रमे अधिकाधिक योग्यतावाळा छे.

३ चाळणीमां रहेलो आटो जेम तुर्त निकळी पडे तेम उपदेश सांभळे के तुर्त विसारी दे, अने शुं सांभळयुं ते सं-
भारवानी जरापण दरकार न राखे ते चाळणी सरखो श्रोता अयोग्य छे.

४ परिपूर्ण एटले गळणी अथवा सुघरीना माळाथी जे घी गळाय ते गळणीमां अने माळामां कचरो झीलाइ रहे
अने घी निकळी जाय तेम उपदेशमांथी सार तजी केवळ दोषने ज ग्रहण करे ते परिपूर्णक सरखो श्रोता अयोग्य जाणवो.

५ हंस जेम दूध पाणीने जूदुं करी दूध पीए छे, तेम जे श्रोता दोषग्राही न होय पण गुणग्राही ज होय ते हंस
सरखो श्रोता योग्य छे.

६ पाडो जेम जळाशय डोळी नाखे छे तेम उपदेश डोळी नाखनार श्रोता पाडा सरखो अयोग्य जाणवो. आ
श्रोता न पोते सांभळे के न बीजाने सांभळवा दे.

७ मेंढो भूमिपर ठरेला एक खोबा जेटला जळने पण मलीन कर्या विना पीए छे, तेम जे श्रोता एक पद मात्र
पण विनयपूर्वक पूछे ते मेंढा सरखो श्रोता योग्य गणाय छे.

८ उपदेशक आचार्यना जाति आदि दोष बोली तिरस्कार करनारो श्रोता मच्छर सरखो अयोग्य गणाय.

९ जळो जेम शरीरने दुःख दीधा विना रुधिर पीए छे तेम जे श्रोता आचार्यने दुभाव्या विना श्रुतज्ञान ग्रहण
करे ते जळो सरखो श्रोता योग्य छे.

नि० २

१० बिलाडी जेम पात्रमां रहेली क्षीर पण नीचे पाडीने खाय छे तेम जे श्रोता साक्षात् गुरु पासे उपदेश न सांभळे परन्तु बीजा सांभळनार पासेथी सांभळी ले ते बिलाडी सरखो श्रोता अयोग्य जाणवो.

११ जेम जाहक नामनुं जानवर थोडी थोडी क्षीर पीने पात्रनां पडखां पण आस्वादे छे, तेम जे श्रोता प्रथम ग्रहण करेला उपदेशने पण अति संभारीने बीजुं पूछे ते जाहक समान श्रोता योग्य छे.

१२ कोइ कणबीए पर्व दिवसे चार ब्राह्मणने एक गाय आपी. तेओए एकेक दिवस दूध दोहवानो वारो बांध्यो, त्यां जेनो वारो आवे ते एम जाणे के मारे तो आजे ज दोहवानो छे, ने काले बीजो दोहशे तेथी हुं निरर्थक घास चारो शा माटे आपुं ? ए प्रमाणे दरेके विचारवाथी गाय घास चारा विना मरण पामी, तेम श्रोताओमां पण शिष्यो जाणे गुरुनो विनय आवेला अभ्यासी साधुओ अने सांभळनारा तथा पूछनारा श्रावकादि करशे, श्रावकादि जाणे के शिष्यो करशे अमे केटलीवार रहेवाना छीए ? ए प्रमाणे थतां केवळ आचार्यनेज विटंबणा थाय माटे एवा विप्र सरखा श्रोता अयोग्य जाणवा.

१३ कृष्णना गुणग्राहीपणानी परीक्षा करी प्रमुदित थयेला देवे ६ मासे वगाडवा योग्य उपद्रवनिवारक भेरी आपी, ते भेरीना रक्षक पासेथी अनेक धनवानोए धन आपी एकेक कटको जळमां घसी पीवा माटे लीधो, जेथी भेरी कंथा सरखी थइ. तेम जे श्रोताओ सूत्रार्थने वच्चे वच्चे भूली जइ बीजा पासेथी सूत्रार्थ ग्रहण करी करी संभारे ते भेरीनी कंथा करनार रक्षकवत् अयोग्य श्रोता जाणवो.

आचार्यस्यैव तज्जाड्यं, यच्छिष्यो नाऽवबुध्यते । गावो गोपालकेनेव, कुतीर्थेनावतारिताः ॥ ५ ॥
किं वा करोत्यनार्याणा, मुपदेष्टा सुवागपि । तक्षा तीक्ष्णकुठारोऽपि, दुर्दारूणि विहन्यते ॥ ६ ॥

१४ घी वेचनार आभीरे भूलथी घी ढळी गयाथी आभीरीने ठपको आपतां आभीरी वढी पडी, अने घीनो विनाश थयो तेम आचार्यना ठपकाथी श्रोता क्रोधी थाय तेवा श्रोता आभीरी सरखा अयोग्य जाणवा.

उपर लखेल १४ द्रष्टांतोमांथी चालु ग्रंथमां आचार्य महाराजे मगशैलने स्थाने वज्रनुं द्रष्टांत आप्युं छे. शेष चाळणी विगेरेनां ३ द्रष्टांत उपर कह्या प्रमाणे जाणवां. एवा श्रोताओने उपदेश करवो निरर्थक होवाथीज अहिं आचार्ये भद्रजीवोने उपदेश श्रवणना अधिकारी गण्या छे. शेष भावार्थ सुगम छे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अर्थः—पूर्व गाथामां अयोग्यने उपदेश आपवो निरर्थक कह्यो ते संबन्धमां कोइ एवी शंका करे के उपदेश आपवा छतां पण जो शिष्य बोध न पामे तो तेमां आचार्यनुंज अज्ञान छे, कारण के गायो जो कुतीर्थमां ( जळाशयमां नहिं उतरवा योग्य मार्गे ) उतरी होय तो ते गोवाळीआएज उतारेली जाणवी. एमां जेम गोवाळीआओ गायो रक्षवानी विधिमां अज्ञान छे, तेम शिष्यने बोध न थवामां अथवा कुतीर्थमां—अधर्मने विषे उतरवामां आचार्यनुंज अज्ञान होय. ॥ ५ ॥ पूर्व गाथामां करेली शंकाना समाधानमां आचार्यश्री कहे छे के श्रेष्ठ वाणीवाळो—देशना लब्धिवाळो उपदेशक पण अनार्यने—अयोग्य जीवने शुं असर करी शके ? जेम तीक्ष्ण कुहाडावाळो ( वांसलावाळो ) सुतार पण कुकाष्टने कापवामां थाकी जाय छे. अर्थात् कापी शकतो नथी. ॥ ६ ॥

अप्रशान्तमतौ शास्त्र-सद्भावप्रतिपादनम् । दोषायाऽभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥ ७ ॥
उदितौ चंद्रादित्यौ, प्रज्वलिता दीपकोटिरमलाऽपि । नोपकरोति यथांधे, तथोपदेशस्तमोऽधानाम् ८॥

अर्थः—जेनुं चित्त अशान्त एटले क्रोधादिकषायो वडे व्याकुळ अने अस्थिर बनेलुं छे तेवा अशान्त चित्तवाळा प्राणीने शास्त्रनां उत्तम रहस्यो—उत्सर्ग अपवाद इत्यादि विधिओनां तात्पर्य प्रतिपादन करवां ते नवा उदय पामेला ज्वरवाळाने—तावाळाने औषध आपवानी माफक दोषने माटे छे, तात्पर्य ए छे के जेनुं चित्त अने इन्द्रियो विषय-विकारथी विमुख थइ होय तेवाओने उत्सर्ग अपवादादि विधिओनुं ज्ञान मोक्षने माटे थाय छे, अने विषय विकारी अने क्रोधी जीवोने एज रहस्यो दुर्गतिमां डूबावनार [1]थाय छे, माटे शिष्यने बोध नहिं थवामां कारण आचार्यनुं अज्ञान नथी पण श्रोतानी अयोग्यता छे. ॥ ७ ॥ जेम चंद्र सूर्य उदय पाम्या होय, अने करोडो निर्मळ दीवा जळहळता होय, परन्तु ते अंधजीवने उपकार करी शकता नथी तेम घोर अज्ञान वडे अंध थयेला प्राणीओने धर्मोपदेश पण कंइ असर करतो नथी, माटे अयोग्यने उपदेश आपवो निरर्थक छे, अने ए निरर्थकतामां आचार्यनुं अज्ञान कारण रूप नथी पण श्रोतानी अयोग्यता कारण छे. ॥ ८ ॥

१ प्रसिद्ध छे के एकज प्रकारना शास्त्रने सांभळनारा अने अभ्यास करनाराओमांथी केटलाएक सदाचारी अने केटलाएक स्वच्छंदीबने छे, एटलुंज नहिं पण ते स्वच्छंदने पुष्ट करवामां पण एज शास्त्रने साधन बनावे छे.

एकतडागे यद्वत्, पिबति भुजंगः शुभं जलं गौश्च । परिणमति विषं सर्पे, तदेव गवि जायते क्षीरम् ॥९॥
सम्यग्ज्ञानतडागे, पिबतां ज्ञानसलिलं सतामसताम् । परिणमति सत्सु सम्यग्, मिथ्यात्वमसत्सु च तदेव ॥१०॥
एकरसमंतरिक्षात्, पतति जलं तच्च मेदिनीं प्राप्य । नानारसतां गच्छति, पृथक् पृथक् भाजनविशेषात् ॥११॥

अर्थः—शिष्यने बोध नहिं थवामां आचार्यनुं अज्ञान कारणरूप नथी पण शिष्यनी ज अयोग्यता छे ते वात द्रढ करवामाटे आचार्य श्री द्रष्टान्त आपे छे के—जेम एकज तळावमां रहेलुं सारुं–मीठुं पाणी सर्प अने गाय बन्ने पीए छे, त्यां सर्पमां एज मीठुं जळ झेररूप बनी जाय छे अने गायमां दूधरूप बनी जाय छे. ॥ ९ ॥ तेनी माफक सम्यग्ज्ञान रूप तळावमां सम्यग्ज्ञान रूप जळ सज्जन अने दुर्जन बन्ने पीए छे, त्यां सज्जनोमां एज ज्ञान सम्यक्–सत्यमार्गरूपे परिणमे छे, अने दुर्जनमां एज ज्ञान मिथ्यात्व–असत्यमार्ग रूपे परिणमे छे, तो शिष्यने बोध न थवामां आचार्यनो दोष के शिष्यनो दोष ? ॥ १० ॥ पुनःएज वातने द्रढ करवा माटे आचार्य श्री बीजुं द्रष्टांत आपे छे के—आकाशमांथी वर्षादनुं जळ पडे छे, ते एकज जातना रस अथवा स्वभाववाळुं छे, ते एक रसवाळुं जळ पृथ्वी उपर पडीने जुदा जुदा पात्रना भेदथी जुदा जुदा रस—स्वभाववाळुं बने छे, अर्थात् सर्पना मुखमां पडे तो झेर थाय, स्वाती नक्षत्र योगे छीपमां पडे तो मोती थाय, खारी भूमीमां पडे तो खारुं थाय अने मीठी भूमीमां पडे तो मीठुं थाय. ( तात्पर्य आगळनी गाथाना अर्थमां ). ॥ ११ ॥

एकरसमपि वाक्यं, वक्तुर्वदनाद्विनिःसृतं तद्वत् । नानारसतां गच्छति, पृथक् पृथक् भावमासाद्य ॥ १२॥

स्वं दोषं समवाप्य नेक्षति यथा सूर्योदये कौशिको,
राद्धिं कंकटुको न याति च यथा तुल्येऽपि पाके कृते ।
तद्वत्सर्वपदार्थभावनकरं संप्राप्य जैनं मतं,
बोधिं पापधियो न यान्ति कुजनास्तुल्ये कथासंभवे ॥ १३ ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥

अर्थः—(तेम) वक्ताना मुखमांथी निकळेलुं एकज रस-स्वभाववाळुं वचन जुदा जुदा भावने पामी जुदा जुदा
स्वभावे परिणमे. अर्थात् जितेन्द्रियने वैराग्यरूपे, विषयविकारीने श्रृंगाररूपे, अने सकषायीने कषायवृद्धिरूपे परि-
णमे तो तेमां आचार्यनो शुं दोष ? ॥ १२ ॥ पुनः एज वातनी द्रढता माटे बीजां द्रष्टांतो कहे छे ते आ प्रमाणे—
सूर्यनो उदय थये पण घूवड जेम देखतो नथी तेम दुर्जन माणस पोतानो दोष पामीने एटले प्रत्यक्ष थये पण दोषरूपे
देखतो-जाणतो नथी, वळी जेम सारा मग अने गांगडु मगने सरखी रीते पकवतां-रांधतां पण गांगडु मग रंधाता
नथी तेम सर्व पदार्थने प्रगट करनार जैन दर्शन सरखो धर्म पामीने पण पापबुद्धिवाळा दुर्जन प्राणीओ सरखी रीते उप-
देश आपवा छतां पण प्रतिबोध पामता नथी. अहिं जे मग अथवा मठ नामना धान्यना दाणा केटलाएक एवा होय
छे के सेंकडो मण काष्ट बाळवा छतां पण रंधाता नथी परन्तु काचाज रहे छे, ए गांगडु दाणा कहेवाय छे. एवा जी-
वोने श्रेष्ठ आचार्यनो उपदेश लेश पण असर न करे तो आचार्यनो शुं दोष ?

हठो हठे यद्वदभिप्लुतः स्यान्नौर्नौविबद्धा च यथा समुद्रे ।
तथा परप्रत्ययमात्रदक्षो लोकः प्रमादांभसि बंभ्रमीति ॥ १४ ॥ उपजाति० ॥
यावत्परप्रत्ययकार्यबुद्धि-र्विवर्त्तते तावदुपायमध्ये ।
मनः स्वमर्थेषु विघट्टनीयं, नह्याप्तवादा नभसः पतंति ॥ १५ ॥ उपजाति ०॥३॥

अर्थः—जेम त्रापाना दोरीआ साथे जोडेलो बीजो दोरीओ समुद्रमां उपद्रववाळो होय, एटले एकनी साथे बीजाने तणावुं पडे, अने नाव साथे बांधेली नावने पण जेम समुद्रमां भटकवुं पडे एटले एकनी साथे बीजी नावने पण तणावुं पडे तेम केवळ परनो विश्वास राखवामां ज निपुणता वाळो लोक प्रमाद रूपी जळमां भ्रमण करे छे. तात्पर्य ए के केवळ परना विश्वास उपर रहेनारो प्राणी स्वबुद्धिवडे हिताहित योग्यायोग्य विचारी शकतो नथी, परन्तु अमुके जे कीधुं तेज सत्य हशे एम माननारो होवाथी तेने यथार्थ वस्तुस्वरूप प्राप्त थतुं नथी. ॥ १४ ॥ ते कारणथी ज्यांसुधी परना विश्वासे कार्य करवानी बुद्धि वारंवार बदलाती रहे एटले बीजाना कहेवा प्रमाणे दोरवाया करे त्यां सुधी पोताना मनने अर्थमां ( वस्तुस्वरूप समजवामां ) विशेषतः संगठित करवुं. अर्थात् ज्यांसुधी वस्तुस्वरूप यथार्थ न समजाय त्यां सुधी ते वस्तुस्वरूप विचार्या करवुं, जेथी अन्ते यथार्थ वस्तुस्वरूप समजाशे. तेवा विचारबळथी पोतानामांज आप्तवादी पणुं प्राप्त थशे. कारणके आप्तवाद कंइ आकाशमांथी पडता नथी, परन्तु आत्माना सम्यक् विचारबळथी आत्मामांज आप्तवाद उत्पन्न थाय छे॥१५॥(१४मी गाथामां हठ शब्दनोअर्थ त्रापाना संभवथी लख्यो छे)

यच्चिंत्यमानं न ददाति युक्तिं, प्रत्यक्षतो नाप्यनुमानतश्च ।
तद्बुद्धिमान् को नु भजेत लोके, गोशृंगतः क्षीरसमुद्भवो न ॥ १६ ॥ उपजाति०॥

ये वैनेया विनयनिपुणैस्ते क्रियंते विनीताः, नाऽवैनेया विनयनिपुणैः शक्यते संविनेतुम् ।
दाहादिभ्यः समलममलं स्यात्सुवर्णं सुवर्णं, नायसिंपडो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १७ ॥ मंदा० ॥

अर्थ–हवे उपदेशनी शरुआतमां प्रथम यथार्थ वस्तुस्वरूपनी प्राप्ति माटे युक्तिशून्य वात न मानवानो उपदेश करे छे- जे वातने प्रत्यक्षथी के अनुमानप्रमाणथी विचारतां पण युक्ति न आपे एटले युक्तिवाळी न होय, तो लोकमां तेवी युक्तिशून्य वात कयो बुद्धिमान् पुरुष अंगीकार करे अथवा माने ? कारण के गायना शिंगडामांथी दूध निकळतुं नथी ( तेम युक्तिशून्य वातमांथी कंइ वस्तु स्वरूप मळतुं नथी )॥ १६ ॥ वळी जे स्वभावेज विनयवाळा होय तेवा शिष्योज विनयनिपुण महात्माओना शिक्षणथी विनयी थाय छे, अने जे स्वभावेज विनयगुणी नथी तेवा अविनयी शिष्योने तो विनयनिपुण महात्माओ पण विनयवान न करी शके. जेम मेलवाळुं पण जो सुवर्ण होय तो अग्निआदि उपक्रम वडे निर्मळ सुवर्ण थाय, परन्तु जे लोखंडनोज गोळो होय ते कंइ छेदवाथी के अग्निमां बाळवाथी इत्यादि उपक्रमथी(उद्यमथी)सुवर्ण न बनी शके. आ गाथा कहेवानुं तात्पर्य ए छे के जेम स्वभावे अविनयी शिष्य विनयी न थाय तेम स्वभावेज युक्तिशून्य वाद युक्तिओना ( कुयुक्तिओना ) श्रवणथी युक्तिवाळो ( आप्तवाद ) न थाय, परन्तु जे स्वभावेज सत्यस्वरूपवाळी वात ( आप्तवाद ) होय तेज सत्य ( आप्तवाद ) थइ शके छे. ॥ १७॥

आगमेन च युक्त्या च, योऽर्थः समभिगम्यते । परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्यः, पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ १८ ॥
मातृमोदकवद् बाला, ये गृह्णन्त्यविचारितम् । ते पश्चात्परितप्यन्ते, सुवर्णग्राहको यथा ॥ १९ ॥
श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग् बुद्धिश्च विचारणे । यः श्रुतं न विचारेत, स कार्यं विन्दते कथम् ॥ २० ॥

अर्थः—शास्त्रने आधारे अने युक्तिने आधारे जे अर्थ समजाय ते अर्थ सोनानी पेठे परीक्षा करी ग्रहण करवो. एमां पक्षपाती आग्रह शामाटे करवो, ? अर्थात् जे वात शास्त्र अने युक्ति बन्ने वडे समजाती होय तो ते वात अंगीकार करवामां कोइपण जातनो पक्षपात न राखवो ॥ १८ ॥ जे बालको ( अज्ञान जीवो ) पत्थर विगेरेना कृत्रिम मोदकने ( लाडुने ) साचो लाडु जाणी विना विचार्ये ग्रहण करे छे तेओ पाछळथी [1] सुवर्णग्राहक पुरुषनी माफक पश्चात्ताप करे छे. तात्पर्य ए छे के जे अज्ञान जीवो विना विचार्ये शास्त्रनुं वचन साचुं माने छे ते सुवर्णग्राहक पुरुषवत् पश्चात्ताप पामे छे, माटे श्रद्धा होय तोपण शास्त्रनुं वचन अंगीकार करवामां पोतानी बुद्धीनो सदुपयोग तो अवश्य [2] करवो ॥१९॥ कारणके (कुदरतथी ज) शास्त्र वचन सांभळवा माटे बे कान बनेला छे, वचन अने बुद्धि विचार करवामां (विचारवा माटे) बनेली छे, छतां पण जे पुरुष सांभळेला वचनने विचारे नहिं ते पुरुष पोतानुं कर्त्तव्य केम समजे? २०

१ सुवर्णग्राहक पुरुषनुं दृष्टान्त ग्रन्थान्तरथी जाणवुं. २ आ श्लोकमां शास्त्रनुं वचन विचारीनेज ग्रहण करवानुं कहेवाथी शास्त्रनी संपूर्ण सत्यतामां खामी दर्शावी एम न जाणवुं, परन्तु संपूर्ण सत्य शास्त्रनुं वचन पण विचारीने ग्रहण करवाथीशास्त्र उपर दृढ श्रद्धा थवा रूप गुण उत्पन्न थाय छे. अथवा तो दरेक शास्त्रो सत्य नहिं होवाथी पण विचारीने ग्रहण करवानुं कहेवानी आवश्यकता छे.

नेत्रैर्निरीक्ष्य विषकंटकसर्पकीटान्, सम्यक् पथा व्रजति तान् परिहृत्य सर्वान् ।
कुज्ञानकुश्रुतिकुदृष्टिकुमार्गदोषान्, सम्यग् विचारयत कोऽत्र परापवादः ॥ २१ ॥वसंततिलका॥
प्रत्यक्षतो न भगवानृषभो न विष्णु, रालोक्यते न च हरो न हिरण्यगर्भः ।
तेषां स्वरूपगुणमागमसंप्रभावात्, ज्ञात्वा विचारयत कोऽत्र परापवादः ॥ २२ ॥वसंत०॥
विष्णुः समुद्यतगदायुधरौद्रपाणिः, शंभुर्ललन्नरशिरोस्थिकपालमाली ।
अत्यंत शान्तचरितातिशयस्तु वीरः, कं पूजयाम उपशान्तमशान्तरूपम् ॥ २३ ॥वसंत०॥

---

अर्थः—मुसाफर जेम मार्गमां रहेला विष, कांटा, सर्प अने जीवजंतु विगेरे नजरे जोइने अने ते सर्व छोडीने सारे मार्गे जाय छे तेम कुज्ञान, कुशास्त्र, कुदृष्टि अने कुमार्गरूप दोषोने छोडीने कोइ विचारवंत सन्मार्गे चाले तो सारी रीते विचारी जुओ के एमां परापवाद (परनी निंदा) शुं ? ॥२१॥ वर्तमानकाळमां साक्षातपणे तो नथी आदीश्वरभगवान के नथी विष्णु के नथी देखाता महादेव के नथी देखाता ब्रह्मा ! केवळ तेओनुं स्वरूप अने गुणनुं वर्णन ते ते शास्त्रना महिमाथी जाणीने जेमां देवत्व संभवे तेने देव मानवा तेमां विचारी जुओ के परापवाद (देवनी निंदा) शुं ?॥२२॥वळी विचारो के विष्णु तो उगामेली गदाशस्त्रवडे भयंकर हाथवाळा छे, महादेव लटकती मनुष्य खोपरीनी माळा पहेरनारा छे, अने वीर अत्यन्त शान्त चरित्रना अतिशयवाळा छे तो हवे कहो के अमे कोनी पूजा करीए ? शान्त चरित्रवाळानी के अशान्त —उग्र चरित्रवाळानी ? अर्थात् शान्तचरित्रवाळा वीरनी पूजा करीए तो महादेव विगेरेनो अपवाद कर्यो केम कहेवाय ?

दुर्योधनादिकुलनाशकरो बभूव, विष्णुर्हरस्त्रिपुरनाशकरो किलासति ।
क्रौंचं गुहोऽपि दृढशक्तिहरं चकार, वीरस्तु केवल जगद्धितसर्वकारी ॥ २४ ॥वसंत०॥
पीडयो ममैष तु ममैष तु रक्षणीयो, वध्यो ममैष तु न चोत्तमनीतिरेषा ।
निःश्रेयसाभ्युदयसौख्यहितार्थबुद्धे-र्वीरस्य संति रिपवो न च वंचनीयाः ॥ २५ ॥वसंत०॥
रागादिदोषजनकानि वचांसि विष्णो-रुन्मत्तचेष्टितकराणि वचांसि शंभोः ।
निःशेषदोषशमनानि मुनेस्तु सम्यग्, वन्द्यत्वमर्हति तु को नु विचारयध्वम् ॥ २६ ॥वसंत०॥

अर्थः—पुनः एज अर्थ दृढ करवा माटे ग्रंथकार कहे छे के विष्णु दुर्योधनादि दुष्टराजाओना कुळनो विनाश करनार थया, महादेव निश्चय त्रिपुर राक्षसनो नाश करनार थया, कार्तिक स्वामिए पण क्रौंच नामना राक्षसने दृढशक्ति रहित कर्यो, अने वीर तो केवळ सर्व जगतनुं कल्याण करनार थया, तो श्री वीरनी पूजा करवामां कार्तिकस्वामि विगेरेनो अपवाद कर्यो केम कहेवाय ? ॥ २४ ॥ विष्णु विगेरे एवा थया तेथी शुं ? ए शंकाना समाधानमां कहेवाय छे के—आ मारे दुःख देवा योग्य छे, आ मारे रक्षण करवा योग्य छे, अने आ मारे हणवा योग्य छे, इत्यादि विचारवुं ते श्रेष्ठ नीति ( धर्म ) नथी. श्रीवीरनी बुद्धि तो सर्व जनना मोक्षना उदयवाळा सुखरूप हितना अर्थ-प्रयोजनवाळी छे माटे वीरना कोइ शत्रुओ नथी तेम कोइ वंचवा-पीडवा योग्य पण नथी. ॥२५॥ वळी विष्णुनां वचनो राग विगेरे दोष उत्पन्न करनारां छे, महादेवनां वचनो उन्मत्त सरखी चेष्टा करनारां छे, अने मुनिनां (वीरनां) वचनो तो सम्यक् प्रकारे सर्व रागादि दोषने शान्त करनारां छे तो हवे विचारी जुओ के वंदना करवा योग्य कोण छे ?

यश्चोद्यतः परवधाय घृणां विहाय, त्राणाय यश्च जगतः शरणं प्रवृत्तः
रागी च यो भवति यश्च विमुक्तरागः, पूज्यस्तयोः क इह ब्रूत चिरं विचिंत्य ॥२७॥वसंत०॥

शक्रं वज्रधरं बलं हलधरं, विष्णुं च चक्रायुधम्,
स्कंदं शक्तिधरं श्मशाननिलयं, रुद्रं त्रिशूलायुधम् ।
एतान् दोषभयार्दितान् गतघृणान् , बालान् विचित्रायुधान्,
नानाप्राणिषु चोद्यतप्रहरणान्, कस्तान्नमस्येद्बुधः ॥ २८ ॥ शार्दूल० ॥

---

अर्थः—एक (देव) दयाना त्याग करी परप्राणीनो वध करवा तत्पर थयेल छे, अने एक (देव) जगतनुं रक्षण करवा शरणरूप थयेल छे, एक (देव) रागी छे, अने एक ( देव ) वीतराग छे तो अहिं ए बे (देवो)मांथी पूजनीय कोण ? ते दीर्घकाळ सुधी विचार करीने कहो. अर्थात् हिंसक अने रागी देव अपूजनीय होय अने दयार्द्र तथा वीतराग देव पूजनीक होय तो एमां हिंसक अने रागी देवनो अपवाद (निंदा-इर्ष्या) कर्यो केम कहेवाय ? ॥२७॥ वळी वीतराग सिवायना बीजा देवोमां दोषनुं चिन्ह दर्शावे छे के-इन्द्र वज्र धारण करे छे, बळदेव हळ राखे छे, विष्णु चक्र राखे छे, कार्तिकस्वामी शक्ति (ए नामनुं शस्त्र) राखे छे, अने श्मशानमां रहेनार रुद्र त्रिशूळ राखे छे, तो दोष अने भयवडे पीडायला, निर्दय, अज्ञान, विचित्र हथिआरो राखनारा अने अनेक जीवोने हणवा माटे उगामेला शस्त्रवाळा ए शक्रादि देवोने कयो बुद्धिमान नमस्कार करे ? अर्थात् कोइ नमस्कार करे नहिं.

श्लोक. ८

न यः शूलं धत्ते न च युवतिमंके समदनां, न शक्तिं चक्रं वा न हलमुशलाद्यायुधधरम् ।
विनिर्मुक्तं क्लेशैः परहितविधावुद्यतधियं शरण्यं भूतानां तमृषिमुपयातोऽस्मि शरणम् ॥२९॥ शिखरिणी॥
रूद्रो रागवशात् स्त्रियं वहति यो हिंस्रो ह्रिया वर्जितो, विष्णुः क्रूरतरः कृतघ्नचरितः स्कंदः स्वयं ज्ञातिहा ।
क्रूरार्या महिषान्तकृन्नरवसामांसास्थिकामातुरा, पानेच्छुश्च विनायको जिनवरे स्वल्पोऽपि दोषोऽस्ति कः
॥३०॥ शार्दूल० ॥

अर्थः—जे भगवान महादेववत् हाथमां त्रिशूळ राखता नथी, खोळामां कामविकार उपजावनारी स्त्री राखता नथी, कार्तिकस्वामीनी पेठें हाथमां शक्ति ( ए नामनुं खड्ग ) राखता नथी, विष्णुनी पेठे चक्र राखता नथी, अने बळभद्रनी पेठे हळमुशळ विगेरे आयुधने पण धारण करता नथी, सर्व क्लेशवडे रहित छे, अने केवळ परनुं कल्याण करवामांज जेनी बुद्धि उजमाळ छे एवा प्राणीओने शरण करवा योग्य ते ऋषिने (श्रीवीरने) शरणेज हुं आवेलो छुं ॥२९॥ जे महादेव प्रेमने वश थइ (पार्वती नामनी) स्त्री राखे छे, [1]हिंसक छे, लज्जारहित छे, वळी विष्णु अतिक्रूर छे, कृतघ्न आचरणवाळा छे, कार्तिकस्वामि पोते पोतानी जातिवाळाओनोज विनाश करनारा छे, अंबिका क्रूर, पाडाओ हणनारी, मनुष्यना चरबी मांस अने हाडना आहारनी इच्छामां व्याकुळ छे, अने गणपति मदिरापाननी इच्छावाळो छे. ए प्रमाणे दरेक देवमां दोष विद्यमान छे पण श्री जिनेश्वर देवमां कयो अल्प दोष पण विद्यमान छे? अर्थात् श्री जिनेश्वर तद्दन निर्दोष होवाथी तेज देव तरीके अंगीकार करवा योग्य छे.

१ हिंसक इत्यादि दूषणोवाळा कयी रीते छे तेनो विस्तार ते ते देवोनां चरित्रोमांथी जाणवो.

ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हरः
सूर्योऽप्युल्लिखितोऽनलोऽप्यखिलभुक् सोमः कलंकांकितः ।
स्वर्नाथोऽपि विसंस्थुलः खलु वपुःसंस्थैरुपस्थैः कृतः
सन्मार्गस्खलनाद् भवंति विपदः प्रायः प्रभूणामपि ॥ ३१ ॥ शार्दूल० ॥

अर्थः—सन्मार्गमां स्खलना पामवाथी ( सन्मार्ग छोडी कुमार्गे चालवाथी ) घणुं करीने महापुरुषोने पण विपत्तिओ आवी पडे छे, उदाहरण तरीके ब्रह्मा छेदायला मस्तकवाळा थया, विष्णु चक्षुमां रोगवाळा थया, महादेव तूटी गयेला लिंगवाळा थया, सूर्य पण ( वांसला वडे ) छोलायो, अग्नि सर्वभक्षी थयो, चन्द्र कलंक वाळो थयो, अने इन्द्र पण निश्चय शरीर उपर रहेली ( हजार ) योनिओ वडे दुःखी थयो, माटे तात्पर्य ए छे के दुनियामां देव तरीके मनाता जीवो पण सन्मार्गथी पतित थया अने तेनुं फळ पण भोगव्युं तो एवा सन्मार्गथी पतित थयेला देवो पूज्य केम गणाय ?

ए देवोना संबंधमां गाथोक्त बनावो केवी रीते बन्या तेनुं संक्षिप्त स्वरूप आ प्रमाणे—

## ब्रह्मानुं मस्तक केम छेदायुं ?

एक वार ३३ क्रोड देवो एकत्र थइ परस्पर मातपितानुं वर्णन करवा लाग्या ते वखते देवोए क-

हुं के महेश्वरना मातपिता जणाता नथी, माटे ते हशे ज नहिं, त्यारे सर्वज्ञपणाना अभिमानथी ब्रह्माना गर्दभ आकार वाळा पांचमा मुखे कह्युं के हुं सर्वज्ञ जीवतां छतां पण एम कोण कहे छे के महादेवना मातपिता नथी ! हुं तेनां मातपिता जाणुं छुं, एम कही ते पांचमुं मुख महेश्वरना मातपितानुं वर्णन करवा लाग्युं जेथी महेश्वरे पोतानां मातपितानी छानी वातने प्रगट करी देवाथी सर्व देव समक्ष कनिष्ठा आंगळीना नखवडे ब्रह्मानुं पांचमुं मस्तक छेदी नाख्युं.

केटलाएक एम पण कहे छे के ब्रह्मा अने विष्णुने परस्पर पोतानी म्होटाइ संबंधि विवाद थतां महेश्वर पासे आव्या, त्यारे महेश्वरे कह्युं के जे म्हारा लिंगनो पार पामे ते म्होटो कहेवाय, जेथी विष्णु घणे नीचे पाताळ सुधी चाल्या गया परन्तु लिंगनो पार न पामतां पाताळ अग्निना तापथी शरीरे काळा थया ने पाछा आवी महेश्वरने लिंगनो पार न पाम्यानी वात जणावी, अने ब्रह्मा उर्ध्वलोकमां घणे दूर सुधी जतां थाक्या पण लिंगनो पार न पाम्या त्यारे लिंगना मस्तक परथी ६ मासथी पडती माळा रस्तामां मली तेने लिंगनो पार पाम्यानी साक्षी पूरवा कहेतां माळाए हा कही जेथी महेश्वर पासे आवी माळानी साक्षी पूर्वक लिंगनो पार पाम्यानी वात जणावी, पोताना अनंत लिंगनो पार पाम्यानी जूठी वात कहेवाथी महेश्वरे कनिष्ठाना नखथी ब्रह्मानुं पांचमुं मस्तक छेद्युं, अने माळाने अस्पृश्य थवानो श्राप आप्यो.

## ॥ विष्णु नेत्ररोगी केम थया ? ॥

उर्वशी उपर मोह पामेला दुर्वासा ऋषिने उर्वशीए अपूर्व वाहनमां बेसी स्वर्गे आववा जणाव्युं, जेथी दुर्वासाए

विष्णुने अने लक्ष्मीने पाछुं वळी नहिं जोवानी प्रतिज्ञा पूर्वक बळद रूपे रथमां जोडी स्वर्गे जाय छे, लक्ष्मी स्त्री जाति होवाथी मंदगतीए रथ खेंचे छे जेथी लक्ष्मीने वारंवार तजना करतां क्रोधी थयेला विष्णुए पाछुं वळी जोयुं, जेथी प्रथमनी प्रतिज्ञा भंग करवाथी दुर्वासाए विष्णुने आंखमां परोणो मार्यो माटे विष्णु नेत्ररोगी थया.

केटलाएक कहे छे के नदी किनारे तप करता विष्णुए नग्न स्नान करती तापसी सन्मुख सराग द्रष्टिए देखतां तापसीए श्राप आपवाथी नेत्ररोगी थया.

## ॥ महादेवनो लिंगछेद केम थयो ? ॥

दारुवन नामना तपोवनमां महादेव रोज भिक्षार्थे जतां तापसीओ साथे अनाचार करे छे. जेथी तापसोने जाण पडतां श्राप आपी महादेवना लिंगनो छेद कर्यो.

## ॥ सूर्यनुं शरीर केम छोलायुं ? ॥

सूर्यनी रत्नादेवी नामनी स्त्रीने यम नामे पुत्र थयो, ते स्त्री सूर्यना तापने सहन नहिं करवाथी पोतानी प्रतिछाया (बीजुं रूप) सूर्यना आवास भुवनमां स्थापी पोते समुद्र किनारे जइ घोडी रूपे रहे छे. प्रतिछायाने शनैश्चर अने भद्र नामना बे पुत्र थया. एकवार यमे बहारथी आवी प्रतिछाया पासे भोजन माग्युं, पण माए (प्रतिछायाए) न आप्युं तेथी यमे लात मारी, त्यारे प्रतिछायाए श्राप आपी क्षय रोगी कर्यो. यमे पिताने कह्युं. पिताने संशय प-

लोक. १० डनां ज्ञानथी जोयुं तो मूळ माताने समुद्रने किनारे जोइ. त्यां जइ स्त्रीनी इच्छा नहिं छतां बळात्कारे रत्नादेवी साथे क्रीडा करतां अश्विनीदेव नामना बे कुमर थया. ए बळात्कारथी रत्नादेवीए सूर्यने श्राप आपी कुष्टरोगी कर्यो, जेथी धन्वन्तरी पासे जतां शरीर छोलाव्याथी निरोगी थवानुं जणाव्युं, तेथी देवसुतारने बोलाव्यो, त्यारे सुतारे कह्युं के सहन करशो त्यां सुधी छोलीश, सूर्ये हा कहेतां सुतार सूर्यनुं शरीर छोलवा लाग्यो परन्तु केटलाक वखत पछी सहन नहिं थतां सीत्कार कर्यो तेथी सूर्य अर्ध शरीरे छोलायलो अने बाकीना भागमां कुष्टरोगी रह्यो. नि०

बीजा कहे छे के घांडीरूप रत्नादेवी साथे बळात्कार कर्या पछी ससराने ठपको आप्यो के तमारी दिकरी मने छोडी बीजे स्थाने रहे छे. त्यारे ससराए कह्युं के त्हारो ताप सहन नथी थतो ते शुं करे ? जो पासे राखवी होय तो शरीर छोलावी नाख ( शेष विगत उपर प्रमाणे. )

## ॥ अग्नि सर्वभक्षी केम थयो ? ॥

एकवार कोइक ऋषि कोइ स्थाने जवा माटे विश्वासथी अग्निने पोतानी स्त्री सोंपी बहार गयो, त्यारे कोइ बीजा ऋषिए आवी अग्निना देखतां ते स्त्री साथे व्यभिचार कर्यो, त्यारबाद ते ऋषिए आवी स्त्रीने देखतां इंगित आकारथी अनाचार जाणी अग्निने पूछतां कंइपण जवाब न आप्यो त्यारे रक्षण करवा योग्यनुं रक्षण नहि करवाथी अने पूछतां उत्तर न आपवाथी क्रोधी थयेला ऋषिए अग्निने श्राप आपी पवित्र के अपवित्र सर्व वस्तुनो भक्षी कर्यो. १०

## ॥ चन्द्र कलंकी केम थयो ? ॥

चन्द्र देवताओना गुरु बृहस्पतिने त्यां दररोज अभ्यास करवा जतां गुरुनी स्त्री उपर राग थयो अने अनाचारी पण थयो, ए वातनी बृहस्पतिने खबर पडतां चन्द्रने श्राप आपी कलंक वाळो कर्यो.

## ॥ इन्द्र हजार योनिवाळो केम थयो ? ॥

एकवार गौतम मुनिने आश्रमे इन्द्र आव्यो, ते वखते गौतममुनि बहार गयेला हता. इन्द्रे गौतमनी स्त्री अहल्याने अति स्वरूप वाळी जोइ मोती बांधी क्रीडा करी, एटलामां गौतम मुनिने आवेला जाणी इन्द्र बिलाडीनु रूप लइ नासवा लाग्यो. गौतमने शक पडतां ज्ञाननो उपयोग मूकी जोयुं तो इन्द्र पोतानी स्त्री साथे अनाचार करी नासी जतो जाण्यो. तुर्तज बिलाडी रूपे नासी जता इन्द्रने श्राप आपी इन्द्रनु शरीर हजार योनिओवाळुं कर्युं, अने पोताना शिष्योने इन्द्र साथे अनाचार करवा मोकल्या पण पोते न गया. त्यारबाद देवोए पोताना स्वामि इन्द्रनी एवी दुर्दशा देखी गौतमुनीने अतिशय विनयथी समजाव्या त्यारे शरीर उपर हजार योनिओने बदले हजार चक्षु कर्यां ए कारणथीज इन्द्र सहस्रचक्षु नामथी प्रसिद्ध छे.

श्लोक. ११

बंधुर्न नः स भगवानरयोऽपि नान्ये, साक्षान्न दृष्टतर एकतमोऽपि चैषाम् ।
श्रुत्वा वचः सुचरितं च पृथग्विशेषं, वीरं गुणातिशयलोलतया श्रिताः स्मः ॥ ३२ ॥ वसंत० ॥

नाऽस्माकं सुगतः पिता न रिपवस्तीर्थ्या धनं नैव तै
र्दत्तं नैव तथा जिनेन न हृतं किंचित् कणादादिभिः ।
किंत्वेकान्तजगाद्धितः स भगवान् वीरो यतश्चामलं
वाक्यं सर्वमलोपहर्तृ च यतस्तद्भक्तिमंतो वयम् ॥ ३३ ॥ शार्दूल० ॥

---

अर्थः—ते श्री वीरप्रभु अमारा बन्धु नथी अने बीजा देवो अमारा शत्रु नथी, वळी ए देवोमांना कोइ एक देवने पण सारी रीते प्रत्यक्ष–नजरे देखेला नथी, परन्तु जुदी जूदी जातना विशेष परमार्थ युक्त वचन अने उत्तम चरित्र ( सदाचार ) वाळा श्री वीरने तो तेमना अतिशयवाळा ( अतिश्रेष्ठ ) गुणो उपर अमने प्रेम थवाथीज आश्रित थया छीए, ॥ ३२ ॥ अथवा बुद्ध भगवान् ( श्रीवीर ) कंइ अमारा पिता नथी, तेम अन्यतीर्थी देवो अमारा शत्रु नथी, वळी तेओए जेम अमने धन आप्युं नथी तेम जिनेन्द्र देवे पण कंइ आप्युं नथी, तेमज कणाद विगेरेए ( वैशेषिक मतना आचार्योए ) अमारुं कांइ हरी लीधुं नथी, परन्तु जे कारणथी केवळ जगतनुं कल्याण करनार ते श्रीवीर भगवान ज छे, कारण के श्रीवीरनुं निर्मळ वचन–शास्त्र सर्व दोषने दूर करनारुं छे ते कारणथीज अमो ते श्री वीरप्रभुनी भक्तिवाळा छीए.

हितैषी यो नित्यं, सततमुपकारी च जगतः, कृतं येन स्वस्थं बहुविधरुजार्त्तं जगदिदम् ।
स्फुटं यस्य ज्ञेयं करतलगतं वेत्ति सकलम्, प्रपद्यध्वं सन्तः सुगतमसमं भक्तिमनसः ॥ ३४ ॥ शिख० ॥

असर्वभावेन यदृच्छया वा, परानुवृत्त्या विचिकित्सया वा ।
ये त्वां नमस्यंति मुनिन्द्रचन्द्र, तेऽप्यामरीं संपदमाप्नुवन्ति ॥ ३५ ॥ उपजाति० ॥

---

अर्थः—जे वीर भगवान् हंमेशां प्राणीओनुं कल्याण इच्छनारा छे. जे जगतने निरन्तर उपकार करनारा छे. घणा प्रकारना व्याधिओ वडे पीडायलुं आ जगत जेणे सुखी कर्युं छे, वळी जेने ज्ञेय पदार्थ साक्षात्–प्रत्यक्ष थइ रहेल छे, तेथी जे भगवान हथेलीमां रहेला पदार्थनी पेठे सर्व ( ज्ञेय पदार्थने ) प्रत्यक्ष रीते जाणे छे. अने जेना सरखो सर्वगुणी जगतमां बीजो कोइ ( अन्यदेव ) नथी ते बुद्धने ( श्रीवीरने ) हे सज्जनो तमो भक्तिवाळा मनथी अथवा भक्तियुक्त मनवाळा थइ शुद्ध देवपणे अंगीकार करो. ॥३४॥ हे श्रेष्ठ मुनिगणमां चन्द्र समान श्रीवीर ! थोडा भावथी, अथवा संज्ञामात्रथी ( नमस्कार करवानो व्यक्त विचार न होय छतां स्वाभाविक रीते नमस्कार थइ जाय तेथी), अथवा बीजानी प्रेरणाथी, अथवा नमस्कारनुं फळ मळशे के नहिं इत्यादि शंकाथी पण जे मनुष्यो तने नमस्कार करे छे ते मनुष्यो पण स्वर्गनी संपदाओ प्राप्त करे छे. अर्थात् अल्प भावादिके करेलो नमस्कार जोके शीघ्र मोक्षफळ न आपे तो पण परंपराए स्वर्गनी संपदाओ आपे अने एवीज परंपरा घणो काळ चालु रहेतां भव्य जीवोने मोक्षफळ पण आपे ए तात्पर्य छे ॥ ३५ ॥

यदा रागद्वेषादसुरसुररत्नापहरणे, कृतं मायावीत्वं भुवनहरणासक्तमतिना ।
श्लोक. तदा पूज्यो वन्द्यो हरिरपरिमुक्तोऽध्रुवतया, विनिर्मुक्तं वीरं न नमति जनो मोहबहुलः ॥३६॥शिख०॥
त्यक्तस्वार्थः परहितरतः सर्वदा सर्वरूपं, सर्वाकारं विविधमसमं यो विजानाति विश्वम् ।
१२ ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरदः शंकरो वा हरो वा, यस्याऽचिंत्यं चरितमसमं, भावतस्तं प्रपद्ये॥३७॥मंदाक्रान्ता॥

---

अर्थः—जगतनी सार वस्तुओ हरी लेवामां आशक्त बुद्धिवाळा विष्णुए ज्यारे राग द्वेषथी दानवो अने देवोनां रत्न ( सार वस्तुओ ) हरवा माटे मायावीपणुं प्रगट कर्युं त्यारे अध्रुवपणावडे नहिं मूकायेल ( एटले विष्णु पण वारंवार नवा अवतार अथवा नवां मायावी रूपो धारण करनार होवाथी पोते अध्रुव ) एवा विष्णु मोहवाळा प्राणीओने पूजनिक अने वन्दनीक थया. कारणके जेम बाजीगर बाळकोने आश्चर्यकारी थाय तेम मोहवाळा जीवोने चमत्कार देखाडनारा देव वन्दनिक पूजनिक होय, माटे एवा अति मोहवाळा मनुष्यो अध्रुवपणाथी रहित ( मायावीपणाथी रहित ) श्रीवीरने नमस्कार करता नथी ॥ ३६ ॥ हवे निष्पक्षपातपणे गुणी देवने अंगीकार करवा माटे कहे छे के—स्वार्थ रहित, परन्तु कल्याण करवामां तत्पर, अने हंमेशां अनेक रूपवाळा अनेक आकारवाळा विचित्र अने विषम एवा जगतने ज्ञानवडे जे संपूर्ण जाणे छे ते देव ब्रह्मा होय विष्णु होय के वरदान आपनार शंकर वा हर १२
( अथवा हरी—इन्द्र ) होय, अने जेनुं चरित्र अचिंत्य अने अतुल होय तेवा कोइ पण देवने हुं भावथी अंगीकार करुं छुं ॥ ३७ ॥ पुनः एज प्रकारनुं निष्पक्षपातपणुं आगळना श्लोकोमां जणावे छे—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कापिलादिषु । युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

अवश्यमेषां कतमोऽपि सर्ववित्, जगद्धितैकान्तविशालशासनः
स एव मृग्यो मतिसूक्ष्मचक्षुषा, विशेषमुक्तैः किमनर्थपंडितैः ॥ ३९ ॥ उपजाति० ॥

यस्य निखिलाश्च दोषा, न सन्ति सर्वेगुणाश्च विद्यन्ते । ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥४०॥ आर्या० ॥

---

अर्थः—हवे आचार्य पोतानी मध्यस्थता प्रदर्शित करे छे—मारे श्री वीरप्रभुमां पक्षपात नथी के कपिलादिकमां द्वेषभाव नथी, परन्तु जेनुं वचन मने युक्तिवाळुं लागे ते देवनो मारे स्वीकार करवो योग्य छे ॥ ३८ ॥ ब्रह्मादिक जे अनेक देवो छे ते सर्वमांथी सर्वज्ञ अने केवळ जगतना कल्याण माटेज जेनुं विशाळ शासन ( गंभीर आज्ञाओ ) छे एवो तो अवश्य कोइ एकज देव छे, अने बुद्धिरूप सूक्ष्म चक्षुवडे ते देव कोण छे ते शोधवो जोइए. परन्तु विशेषरहित ( सामान्य जीवो अने ए देवोमां फेरफार न होवाथी ) अथवा विशेषपणे वर्णवेला छतां अनर्थ उत्पन्न करवामां पण्डित सरखा एवा बीजा देवो वडे शुं प्रयोजन छे ? ॥ ३९ ॥ जे देवमां सर्वदोषोमांनो एक पण दोष न होय, परन्तु सर्व सद्गुणोज होय एवा देव चाहे ब्रह्मा होय विष्णु होय अथवा महेश्वर होय के जिन—अरिहंत होय तो तेमने पण मारो नमस्कार छे, अहिं ब्रह्मादिकने नमस्कार करवाथी पण वस्तुतः श्री जिनेश्वरनेज नमस्कार जाणवो. ॥ ४० ॥ अहिं सुधीमां देवत्वादिनो उपदेश समाप्त थयो, हवे जगतनी उत्पत्ति संबन्धमां जे विविध प्रकारना मतभेद छे ते दर्शावे छे. लोकतत्त्व ग्रंथनो वास्तविक प्रारंभ पण हवे ज थाय छे.

## । अथ लोकादितत्त्वत्रये प्रथमं लोकतत्त्वम् ॥

( आर्यावृत्तानि )

लोकक्रियात्मतत्त्वे, विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थं । अविदितपूर्वं येषां, स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥४१॥
इच्छान्ति कृत्रिमं सृष्टि–वादिनः सर्वं एवमिति लोकं । कृत्स्नं लोकं माहेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥४२॥
नानीश्वरजं केचित् केचित्सोमाग्निसंभवं लोकं । द्रव्यादिषड्विकल्पं, जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥४३॥

---

अर्थः—जेओए प्रथम स्याद्वादवडे निर्णित थयेलुं तत्त्व जाण्युं नथी तेवा ( स्याद्वाद तत्त्वने नहि जाणनार ) वादीओ जगत्–क्रिया–अने आत्मतत्त्वना संबन्धमां भिन्न भिन्न अर्थ विवाद करे छे ते आ प्रमाणे–॥ ४१ ॥ सृष्टिवादीओ ( जगतनो कर्त्ता माननारा ) आ सर्व जगतने कृत्रिम ( कोइए पण बनावेलुं छे एम ) माने छे. अने माहेश्वरादि मतवाळा समस्त जगतने सादिसान्त ( सृष्टीनो उत्पन्न करनार छे तेम कोइ विनाश करनार पण छे एम ) माने छे ॥ ४२ ॥ केटलाएक आ जगत ईश्वरनुं बनावेलुं नहिं एम माने छे, केटलाएक आ जगतने चन्द्र अने अग्निथी उत्पन्न थयेलुं माने छे, अने केटलाएक द्रव्यादि ६ भेदवाळुं आ जगत माने छे. ए द्रव्यादि ६ भेदवाळुं जगत कया दर्शनवाळा माने छे ? अने ते द्रव्यादि ६ भेद कया ? तेनी स्पष्टता आगळना श्लोकथी करे छे. ॥ ४३ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्य-युक्तिविशेषात्(न्)कणाशिनस्तत्वम् । वैशेषिकमेताव-ज्जगदप्येतावदेतावत् ॥४४॥
इच्छन्ति काश्यपीयं, केचित्सर्वं जगन्मनुष्याद्यं । दक्षप्रजापतीयं, त्रैलोक्यं केचिदिच्छन्ति ॥ ४५ ॥
केचित्प्राहुर्मूर्त्ति-स्त्रिधा गतैका हरिः शिवो ब्रह्मा । शंभुर्बीजं जगतः, कर्त्ता विष्णुः क्रिया ब्रह्मा ॥४६॥

अर्थः-वैशेषिक दर्शनना आचार्य कणादनां तत्त्व द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-समवाय-अने विशेष ए भेदोथी ६ छे. अथवा मूळ गाथामां "विशेषान्" पाठ होय तो अर्थ ए थाय के-कणादो (एटले वैशेषिक दर्शनवाळाओ) द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-समवाय-अने विशेष ए ६ने तत्व माने छे, जेथी ए वैशेषिकदर्शन आटला जगतने पण एटलाज तत्त्ववाळुं माने छे, ॥४४॥ केटलाएक आ जगतने काश्यप नामना ऋषीथी पेदा थयेलुं माने छे. केटलाएक आ सर्व जगतने मनुष्यनी आदिवाळुं(प्रथम मनुष्य उत्पन्न थयो त्यारबाद अनुक्रमे बीजा पदार्थो उत्पन्न थया) माने छे, अने केटलाएक आ जगतने दक्ष नामना प्रजापतिथी उत्पन्न थयेलुं माने छे ॥ ४५ ॥ केटलाएक कहे छे के एकज प्रकारनी मूर्ति विष्णु महादेव अने ब्रह्मा एम त्रण प्रकारनी बनेली छे, तेमां जगतनुं कारण महादेव, कर्त्ता विष्णु, अने क्रिया ब्रह्मा छे.

१ अहिं "युक्ति" नो अर्थ "समवाय" थइ शके छे,

२ द्रव्य-गुण-कर्म सामान्य-विशेष-अने-समवाय ए ६ तत्व वैशेषिकमतमां छे. अने केटलाएक अभावने सातमुं तत्व कहे छे. नैयायिक अने वैशेषिकदर्शन अमुक तफावत सिवाय लगभग सरखुं छे.

वैष्णवं केचिदिच्छन्ति, केचित् कालकृतं जगत् । ईश्वरप्रेरितं केचित्, केचिद् ब्रह्मविनिर्मितं ॥ ४७ ॥
अव्यक्तप्रभवं सर्वं, विश्वमिच्छन्ति कापिलाः । विज्ञप्तिमात्रं शून्यं च, इति शाक्यस्य निश्चयः ॥ ४८ ॥
पुरुषप्रभवं केचिद्, दैवात् केचित् प्रभावतः । अक्षरात् क्षरितं केचित्, केचिदंडोद्भवं जगत् ॥ ४९ ॥
यादृच्छिकमिदं सर्वं, केचिद् भूतविकारजं । केचिच्चानेकरूपं तु, बहुधा संप्रधाविताः ॥ ५० ॥

अर्थः—केटलाएक आ जगतने विष्णुथी बनेलुं, केटलाएक काळथी बनेलुं, केटलाएक ईश्वरनी प्रेरणावाळुं ( ईश्वरनी प्रेरणा विना एक पांदडुं पण न हाले एवुं ), अने केटलाएक ब्रह्मानुं बनावेलुं माने छे. ॥ ४७ ॥ कपिल ( सांख्य ) मतवाळा आ जगतने अव्यक्तथी ( प्रकृतिथी ) उत्पन्न थयेलुं माने छे. अने शाक्यमतनो निर्णय एवो छे के आ जगत् विज्ञान मात्र ( जाणवा मात्र ) अने शून्य ( जे देखाय छे ते कंइ नहिं एवुं ) छे ॥ ४८ ॥ केटलाएक आ जगतने आत्माथी उत्पन्न थयेलुं, केटलाएक दैवना प्रभावथी उत्पन्न थयेलुं, केटलाएक अक्षरमांथी ( ब्रह्ममांथी ) खरेलुं अने केटलाएक इंडाकारमांथी उत्पन्न थयेलुं माने छे, ॥ ४९ ॥ केटलाएक आ जगतने यादृच्छिक ( अतर्कित—अकस्मात ) उत्पन्न थयेलुं, केटलाएक पंचभूतना विकारथी थयेलुं, अने केटलाएक अनेक रूपवाळुं माने छे, एम जगतनी उत्पत्तिमां अनेक मतवादीओ अनेक विचारमां दोडेला छे.

१ सत्व, रजस्, अने तमो गुणनी तुल्यता ते प्रकृति. ए प्रकृतिथी बुद्धि, बुध्धिथी अहंकार, अहंकारथी स्पर्शादि १६ मो गण, अने गणमांना स्पर्शादि पांचमांथी पंचभूत पेदा थइ जगतनी रचना थाय—इति सांख्य

वैष्णव मतमां जगतनुं स्वरूप आ रीते कह्युं छे.—

जले विष्णुः स्थले विष्णु,राकाशे विष्णुमालिनि । विष्णुमालाकुले लोके, नास्ति किंचिदवैष्णवम्॥५१॥
सर्वतः पाणिपादान्तं, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं । सर्वतः श्रुतिमान् लोके, सर्वमाश्रित्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥
उर्ध्वमूलमधः शाख–मश्वत्थं प्राहुरव्ययं । छन्दांसि यस्य पत्राणि, यस्तं वेत्ति स वेदवित् ॥ ५३ ॥

अर्थः—विष्णुमतवाळा कहे छे के जळमां विष्णु ( आत्मा ), स्थळमां विष्णु अने आकाशमां पण विष्णु छे. विष्णुना समूहथी व्याप्त थयेला आ जगतमां विष्णु सिवाय बीजुं कंइ नथी, अहिं तात्पर्य ए के सर्व जगत् विष्णुमय छे, जेथी विष्णुथी व्यतिरिक्त ( जूदुं ) जगत नथी. अर्थात् आखुं जगत् विष्णु स्वरूप छे ॥ ५१ ॥ सर्व बाजुए (सर्वत्र) जेना हाथपगना छेडा ( एटले हाथपग ) छे, सर्व बाजुए नेत्र मस्तक अने मुख छे, सर्व बाजुए जेना कान छे, अने जे सर्व पदार्थमां आश्रय करी रहेला छे एवा विष्णुवाळुं आ जगत छे ॥ ५२ ॥ महात्माओ ब्रह्मने उपर मूळ अने नीचे शाखावाळा अविनाशी पीपळातुल्य ( अर्थात् वृक्षरूप पीपळानां मूळ नीचे अने शाखा उपर होय छे, अने विनाश स्वभावी होय छे, पण आ ब्रह्मरूप पीपळो तो उपर मूळ अने नीचे शाखावाळो अने अविनाशी स्वभाववाळो) कहे छे, के जे ब्रह्मरूप पीपळानां पत्र वेदमन्त्र छे, तेवा ब्रह्मने जे जाणे ते वेद जाणनार ( सर्व पदार्थ जाणनार ) कहेवाय, अने ए वेदनो जाणनार ते आ जगतनो जाणनार कहेवाय ए तात्पर्य.

पुराणमां जगतनी उत्पत्ति आ रीते कही छे.—

श्लोक. १५

तस्मिन्नेकार्णवीभूते, नष्टस्थावरजंगमे । नष्टामरनरे चैव, प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ५४ ॥
केवलं गव्हरीभूते, महाभूतविवर्जिते । अचिंत्यात्मा विभुस्तत्र, शयानस्तप्यते तपः ॥ ५५ ॥ युग्मम् ॥
तत्र तस्य शयानस्य, नाभौ पद्मं विनिर्गतम् । तरुणार्कमंडलनिभं, हृद्यं कांचनकर्णिकम् ॥ ५६ ॥
तस्मिंश्च पद्मे भगवान्, दंडकमंडलुयज्ञोपवीतमृगचर्मवस्त्रसंयुक्तः ।
ब्रह्मा तत्रोत्पन्नस्तेन जगन्मातरः सृष्टाः ॥ ५७ ॥ आर्याभेद ॥

---

अर्थः—ते जगत प्रलयकाळमां ज्यारे एक समुद्ररूप थइ जाय छे ( सर्वत्र जळाकार थाय छे ) अने स्थावर तथा त्रस प्राणीओ नाश पामे, देव अने मनुष्यो नाश पामे, सर्प अने राक्षसो नाशपामे अने तेम थवाथी महाभूत ( पृथ्व्यादि स्थूळपदार्थो) रहित थतां ज्यारे केवळ आ जगत एक पोली गुफा सरखुं थाय त्यारे न कळी शकाय एवा आत्मावाळा विष्णु त्यां ( समुद्रमां ) सूता सूता तप करे छे ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ त्यां समुद्रमां सूतेला विष्णुनी नाभीमांथी मध्यान्हना सूर्यमंडळ सरखुं तेजवाळुं मनोहर अने सोनानी कर्णिकावाळु कमळ निकळ्युं, ॥ ५६ ॥ अने ते कमळमांथी दंड कमंडळ जनोइ मृगचर्म अने वस्त्र सहित भगवान ब्रह्मा उत्पन्न थया ते ब्रह्माए जगतनी माताओ ( आगळना श्लोकमां कहेली ) उत्पन्न करी ॥ ५७ ॥

ब्रह्माए उत्पन्न करेली माताओथी बनेलुं जगत आ रीते—

अदितिः सुरसंघानां, दितिरसुराणां मनुर्मनुष्याणां । विनता विहंगमानां, माता विश्वप्रकाराणाम् ॥५८॥
कद्रूः सरीसृपाणां, सुलसामाता तु नागजातीनां । सुरभिश्चतुष्पदानां, इला पुनः सर्वबीजानाम् ॥५९॥ यु०
प्रभवस्तासां विस्तर–मुपागतः केचिदेव मिच्छन्ति । केचिच्च दन्त्यवर्णं, सृष्टं वर्णादिभिस्तेन ॥ ६० ॥
कालः सृजति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ६१ ॥

---

अर्थः—देवसमूहनी माता अदिति, असुरोनी माता दिति, मनुष्योनी माता मनुरुषि, सर्व जातिना पक्षीओनी माता विनता, सर्पोनी माता कद्रू, नागजातना सर्पोनी माता सुलसा, पशुओनी माता सुरभि, अने सर्व धान्यादिक बीजोनी माता पृथ्वी ॥ ५९ ॥ ए प्रमाणे ते माताओमांथी उत्पन्न थएल जे देव विगेरे तेनोज विस्तार पाम्यो छे, (अने तेथी आ जगत बन्युं ए तात्पर्य छे ) एम केटलाएक मतवाळा माने छे. अने केटलाएक तो एम माने छे के प्रथम आ जगत क्षत्रियादि वर्णविभाग विनानुं हतुं ते जगतने तेणे ( ब्रह्मादिकमांथी कोइए ) वर्णव्यवस्थावाळुं बनाव्युं, पण नवुं जगत बनाव्युं एम नहिं. अहिं माता एटले जेमांथी जेनी उत्पत्ति ते तेनी माता जाणवी. ॥ ६० ॥ काळवादीओ कहे छे के काळ भूतोने ( पृथ्व्यादि तत्त्वोने ) बनावे छे, काळ प्रजानो ( पृथ्व्यादिनो ) नाश करे छे, अने सुतेलाओमां पण काळ जागे छे ( अर्थात् प्राणिओ उंघता होय पण ते प्राणीओनो काळ तो पोतानुं कार्य करतोज रहे छे ) माटे काळ निश्चय उलंघन करवा योग्य नथी ॥ ६१ ॥

श्लोक. १६

प्रकृतीनां यथा राजा, रक्षार्थमिह चोद्यतः। तथा विश्वस्य विश्वात्मा स जागर्ति महेश्वरः॥ ६२ ॥

अन्यो जंतुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयो। ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्, स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ ६३ ॥

सूक्ष्मोऽचिंत्यो विकरणगणः सर्ववित् सर्वकर्त्ता, योगाभ्यासादमलिनधिया, योगिना ध्यानगम्यः।
चन्द्रार्काग्निक्षितिजलमरुद्दीक्षिताकाशमूर्त्ति–र्ध्येयो नित्यं शमसुखरतैरीश्वरः सिद्धिकामैः ॥ ६४ ॥

---

अर्थः—वळी ईश्वरवादिओ कहे छे के जेम आ लोकमां प्रजाना रक्षणमाटे राजा प्रयत्नवाळो छे, तेम आ जगतना रक्षणमाटे ते जगतनो आत्मा महेश्वर जागे छे (अर्थात् -जगत महेश्वरनी प्रेरणाथी चाले छे ) ॥ ६२ ॥ कारणके पोताने सुख अथवा दुःख आपवामां असमर्थ एवो आ बीजो ( महेश्वर सिवायनो बीजो ) जीव ईश्वरनी प्रेरणाथीज स्वर्गमां के नरकमां जइ शके छे. ॥ ६३ ॥ वळी ईश्वरवादी एम पण कहे छे के सूक्ष्म ( इन्द्रियोने अगोचर ), अचिंत्य, इन्द्रियरहित, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, योगना अभ्यासथी निर्मळ बुद्धिवाळा योगीओवडे ध्यानथीज ओळखवा योग्य, अने चन्द्र–सूर्य–अग्नि–पृथ्वी–जळ–वायु–यजमान–अने आकाश ए आठ रूपवाळो ईश्वर शान्ति सुखमां मग्न थयेला मोक्षनी इच्छावाळा पुरुषोए निरन्तर ध्यान करवा योग्य छे. (तात्पर्य के चन्द्रादिवाळुं जगत ईश्वरथीज बनेलुं छे).

ब्रह्मवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

आसीदिदं तमोभूत-मप्रज्ञातमलक्षणं । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६५ ॥
ततः स्वयंभूर्भगवा-नव्यक्तो व्यंजयन्निदं । महाभूतादिवृत्तौजाः, प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६६ ॥
लोकानां स च वृद्ध्यर्थं, मुखबाहूरुपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं, शूद्रं च विन्यवर्त्तयत् ॥ ६७ ॥

अर्थः—पहेलां आ जगत् अंधकारमय, नहिं जाणी शकाय एवुं, लक्षण रहित, तर्कमां ( विचारमां ) न आवी शके एवुं, नहिं जाणवा योग्य ( जेमां कोइ जाणवा जेवी वस्तु नहिं एवुं ), अने सर्वबाजुए जाणे सूइ गयेलुं होय एवुं हतुं ॥ ६५ ॥ त्यारपछी कोइक वखत अव्यक्त ( स्पष्टपणे उपलब्ध न थइ शके एवा ) स्वयंभू भगवान् ( ब्रह्मा ) के जेनुं तेज महाभूत विगेरेथी ढंकायलुं हतुं ते भगवान् अंधकारनो नाश करता प्रगट थया ( अर्थात् स्वयंभू भगवाने महाभूतादि आवरण दूर करी पोतानुं तेज प्रकाशित कर्युं ॥ ६६ ॥ त्यारबाद ते स्वयंभू भगवाने ( ब्रह्माए ) लोकनी वृद्धि करवा माटे ( मनुष्यसृष्टि बनाववा माटे ) पोताना मुखमांथी ब्राह्मणो उत्पन्न कर्या, भुजामांथी क्षत्रीओ उत्पन्न कर्या, साथळमांथी वैश्य उत्पन्न कर्या, अने पगमांथी शूद्र उत्पन्न कर्या, ( ६०मी गाथामां जे उत्पन्न थयेली अवर्ण सृष्टिने ब्रह्माए वर्णादि विभाग सहित करवानुं कह्युं छे ते आ त्रण श्लोकना भावर्थथी स्पष्ट थयु ).

सांख्यमतवाळा आ प्रमाणे कहे छे—

पंचविधमहाभूतं, नानाविधदेहनामसंस्थानं । अव्यक्तसमुत्थानं, जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ ६८ ॥
सर्वगतं सामान्यं, सर्वेषामादिकारणं नित्यं । सूक्ष्ममलिंगमचेतन, मक्रियमेकं प्रधानाख्यं ॥ ६९ ॥
प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः । तस्मादपि षोडशकात्, पञ्चभ्यः पंचभूतानि ॥ ७० ॥

अर्थः—आ जगत् पांच प्रकारना ( पृथ्वी–जळ–अग्नि–वायु–अने आकाश ए पांच महाभूत ) मूळ तत्त्वो वाळुं, अनेक प्रकारनां शरीर ( रूप ) नाम अने आकारवाळुं [ कारणके आ जगतना पदार्थोनुं रूप नाम अने आकार नियमित नथी ), अव्यक्तथी–प्रकृतिथी ( सांख्यदर्शनमां प्रकृतिनां अव्यक्त अने प्रधान एवां बे पर्याय नाम छे तेथी ] उत्पन्न थयेलुं छे, एम केटलाएक ( सांख्यदर्शनीओ ) माने छे ॥ ६८ ॥ अव्यक्तनुं स्वरूप कहे छे के–ते अव्यक्त ( प्रकृति ) जगतमां सर्वव्यास, सामान्य ( सर्वनी उत्पत्तिमां साधारण कारण ), सर्वभूतोनुं आदिकारण ( मूळ ), नित्य, सूक्ष्म, लिंग [ ओळखवानी निशानी ) रहित, अचेतन, क्रियारहित, अने एकज छे. ॥६९॥ ते प्रकृतिथी महान् (एटले बुद्धि), महानथी अहंकार, अने अहंकारमांथी स्पर्शादि १६ नो गण ( स्पर्शादि ५ इन्द्रिय, स्पर्शादि ५ विषय, गुदा, लिंग वचन, हाथ, पग, ५ कर्मेन्द्रिय, अने मन)उत्पन्न थाय छे, अने ए १६ ना गणमां जे स्पर्शादि पांच छे तेमांथी दरेकमांथी एकेक भूत ( तत्त्व ) उत्पन्न थवाथी पांचमांथी पांचभूत उत्पन्न थाय छे.

१. सत्वगुण, रजोगुण, अने तमोगुणनी जे समावस्था ते अव्यक्त, प्रधान, अथवा प्रकृति कहेवाय. (षड्दर्शनसमुच्चये).

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त। षोडशकश्च विकारो, न प्रकृतिर्न च विकृतिः पुरुषः॥७१॥
गुणलक्षणो न यस्मात् कार्यकारणलक्षणोऽपि ना यस्मात्। तस्मादन्यः पुरुषः, फलभोक्ता चात्यकर्ता च॥७२॥

अर्थः—सांख्यदर्शनमां प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, ५ बुद्धीन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ मन, ५ तन्मात्रा ( रूप-रस-गंध-शब्द-अने स्पर्श ) ५ भूत, अने पुरुष ए २५ तत्त्व कह्यां छे. ए २५ मां जे मूळप्रकृति ( अव्यक्त अथवा प्रधान एवा पर्याय नामवाळी ) ते कोइनो विकार नथी, कारण के कोइ पदार्थनु रूपान्तर नथी, अथवा जेनी उत्पत्ति होय ते विकार कहेवाय. माटे प्रकृतिनी उत्पत्ति नहिं होवाथी प्रकृति ए विकार नथी, तथा बुद्धि, अहंकार, ने ५ महाभूत ए सात तत्त्व बीजां तत्वोनु कारण होवाथी प्रकृति अने कार्यरूप होवाथी विकृति पण छे, अने १६ नो गण तो केवळ विकृति-विकार ज छे, अने ए सर्वथी भिन्न पुरुष-आत्मा तो प्रकृति नथी तेम विकृति पण नथी, ॥७१॥ पुरुष ए प्रकृति नथी अने विकृति पण नथी तेनुं कारण कहे छे—जे कारणथी आत्मा सत्वादि गुणरहित होवाथी गुणवाळो नथी. कारणके सत्वादि [1]गुण तो प्रकृतिनो धर्म छे पण पुरुषनो नहि. वळी जे कारणथी अविकृत होवाथी कार्यवाळो नथी, अने प्रकृत्यादि २४ तत्वोत्पत्तिमां कारणवाळो नथी, ते कारणथी फळनो भोक्ता ( वास्तविक रीते अभोक्ता पण उपचारथी भोक्ता ) अने पुण्य पापनो करनार नहिं होवाथी अकर्ता ( कारणके कर्ता तो प्रकृतिज छे, अने पुरुष तो तृण पण वांकु वाळवा असमर्थ छे माटे अकर्ता) एवो पुरुष-आत्मा पूर्वोक्त २४ तत्वोथी अन्य जुदो छे.

१ रजस् आदि गुण ते प्रकृति, अने रजस् आदि गुणना विकारो ते विकृति छे, अने गुण रहित केवळ आत्मा ते पुरुष छे, माटे पुरुष ए प्रकृति नहिं तेम विकृति पण नहिं ए तात्पर्य.

प्रवर्त्तमानान् प्रकृतेरिमान् गुणान्, तमोवृतत्वाद्विपरीतचेतनः।
अहंकरोमीत्यबुधोऽपि मन्यते, तृणस्य कुब्जीकरणेऽप्यनीश्वरः ॥ ७३ ॥
विज्ञप्तिमात्रमेवैतत्, असमर्थोऽवभासनात् यथा। तैमिरकस्येह, कोशकीटादिदर्शनम् ॥ ७४ ॥
क्रोधशोकमदोन्माद, कामदोषाद्युपद्रुताः। अभूतानि च पश्यन्ति, पुरतोऽवस्थितानि च ॥ ७५ ॥

अर्थः—पुनः प्रकृति अने विकृतिथी पुरुषनीभिन्नता स्पष्ट करे छे–तमोगुणवडे अथवा अज्ञानरुप अंधकारवडे आवृत थवाथी ( ढंकावाथी ) जेनुं ज्ञान विपरीत–उलटुं थइ गयुं छे एवो चेतन (पुरुष–आत्मा) जे एक तृण मात्रने पण कुब्ज करवाने(वांकु वाळवाने)असमर्थ छे, तोपण अज्ञानी आत्मा "हुं करुंछुं" एम माने छे. ए प्रमाणे सांख्यदर्शनमां आ जगतने प्रकृतिथी उत्पन्न थयेलुं २५ तत्ववाळुं माने छे ए तात्पर्य छे ॥ ७३ ॥ हवे बौद्धमतवाळा जगतनी उत्पत्ति आ प्रमाणे कहे छे के–जेम आंखे अंधारीयां आववाथी भ्रमथी कोशकीडा ( कीडानी कोइक जाती विशेष ते कोशकीडा ) विगेरेनुं दर्शन थाय छे तेम असमर्थज्ञानथी ( जगतने जाणवा जेवुं पूर्ण समर्थ ज्ञान नहिं होवाथी ) आ जगत विज्ञानमात्र रुपे ( ते पदार्थ नहिं छतां ते पदार्थ जोउंछुं एवा रुपे ) देखाय छे. परन्तु वास्तविक कंइ नथी. ॥ ७४ ॥ कारणके क्रोध, शोक, मद, उन्माद, काम विगेरे दोषोथी पराभव पामेला–भ्रमवाळा थयेला जीवो अभूतोने ( अवस्तुओने ) पण पोतानी सन्मुख रहेली वस्तुओरुपे देखे छे. तात्पर्य ए छे के जगत कंइ नहिं होवा छतां पण भ्रमथी आ वस्तु जगत छे एम देखे छे. ॥ इति विविधमते लोकस्वरूपम्. ॥

## ॥ अथ आत्मतत्त्वम्. ॥

पुरुषवादीओ जगत्नी उत्पत्ति आ प्रमाणे कहे छे.

पुरुष एवेदं सर्वं, यद्भूतं यच्च भाव्यं । उतामृतत्वस्येशानो, यदन्नेनातिरोहति ॥

यदेजति यन्नेजति, यद्दूरे यदु अंतिके, यदंतरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यो, यस्मात्परं नापरमस्ति

किंचिद्यस्मान्नाणीयो, न ज्यायोऽस्ति कश्चिद् वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषरूपेण,

सर्वं एक एव हि भूतात्मा, तदा सर्वं प्रलीयते ॥ १ ॥

द्वावेव पुरुषौ लोके, क्षरश्चाऽक्षर एव च ॥ क्षरश्च सर्वभूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ २ ॥

---

अन्नवडे वृद्धि पामे छे ते सर्व आ-

अर्थः—जे थयेलुं छे, जे थवानुं छे, अथवा मोक्षपणानो अधिपति, अने जे अन्नवडे वृद्धि पामे छे ते सर्व आ-

त्मा ( एक ब्रह्म ज ) छे. जे हाले छे (त्रस छे), जे हालतो नथी एटले स्थावर छे, जे दूर छे, जे नजीक छे, जे आ स-

र्वनी अंदर छे, जे आ सर्वनी बहार छे, जेनाथी कोइ उत्कृष्ट नथी, जेनाथी कोइपण नानो नथी, जेनाथी

कोइ मोटो नथी, अने ( विराटरूप होवाथी ) आकाशमां वृक्षनी माफक जे एक स्थिर रहे छे, तेज एक

आत्माना रूप वडे आ सर्व जगत् पूर्ण भरेलुं छे. जगतमां ज्यारे ए एकज भूतात्मा ( पुरुषरूप ) होय छे,

त्यारे बीजुं सर्व ( पृथ्व्यादि रूपान्तर तत्वो ) ए आत्मामां लय पामी जाय छे ॥ १ ॥ कारणके लोकमां क्षर अ-

ने अक्षर ए बेज पुरुष छे, त्यां सर्व भूत (पृथ्व्यादि पांच महातत्त्वो) क्षर पुरुष छे. अने इश्वर अक्षर पुरुष कहेवाय छे. ॥२॥

बीजा [1] आत्मवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

विद्यमानेषु शास्त्रेषु, ध्रियमाणेषु वक्तृषु । आत्मानं ये न जानन्ति, ते वै आत्महना नराः ॥ ३ ॥
आत्मा वै देवता सर्वे, सर्वमात्मन्यवस्थितं । आत्मा हि जनयत्येष, कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ ४ ॥
आत्मा धाता विधाता च आत्मा च, सुखदुःखयोः । आत्मा स्वर्गश्च नरकश्च, आत्मा सर्वमिदं जगत् ॥५॥

अर्थः—शास्त्रो विद्यमान होय, अने वक्ताओनो ( उपदेशकोनो ) पण संयोग बने छतां जे जनो आत्माने ओळखता नथी ते जनो खरेखर पोताना आत्मावडे पोतेज हणायला जेवा छे ॥ ३ ॥ आत्मा एज सर्व देवो छे ( अर्थात् ब्रह्मादि सर्व देवनु देवत्व आत्मामां छे ) कारण के आत्मामांज सर्व ( ब्रह्मादि देवत्व विगेरे ) रहेलुं छे, अने जीवोने कर्मनो संबंध पण आ आत्माज करावे छे. ॥४॥ आत्मा एज धाता ( ब्रह्मा ) अने सुख दुःखनो विधाता (करनार) पण आत्मा छे, स्वर्ग ते आत्मा अने नरक ते पण आत्मा छे, विशेष शुं कहेवुं ! आ सर्व जगत ते आत्माज छे ॥ ५ ॥

१ जे धर्म आत्मानुं अस्तित्व मानतो होय तेज आत्मवादी कहेवाय एवो अहिं संबंध नहिं, पण जे धर्म अन्य इश्वरनुं कर्तापणुं नहिं स्वीकारी आत्मा पोतेज कर्ता भोक्ता छे एम स्वीकारे ते अहिं ( चालु प्रकरणमां ) आत्मवादी जाणवो.

न कर्तृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजते प्रभुः । स्वकर्मफलसंयोगः, स्वभावाद्धिप्रवर्त्तते ॥ ६ ॥
आत्मज्ञानस्वभावेन, स्वयं मननसंभवात् । स्वकर्मणश्च संभूतेः स्वयंभूर्जीव उच्यते ॥ ७ ॥
नैनं छिंदति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः । नचैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥ ८ ॥

---

अर्थः—परमेश्वर आ लोकनुं कर्तापणु करतो नथी (अर्थात् परमेश्वर जगत् बनावतो नथी), तेम कर्मोने पण बनावतो नथी, परन्तु सर्व जीवोना पोतपोताना कर्मना फळनो संयोगज स्वभावथी प्रवर्त्ते छे, अर्थात् जीवे करेला कर्मनोज एवो स्वभाव छे के तेवा तेवा प्रकारनी जीवप्रवृत्तिओ प्रवर्तती रहे, एमां इश्वरनो संबंध कंइ नथी. ॥६॥ आत्मज्ञानना स्वभाववडे ( आत्मामां ज्ञान स्वभावेज रहेलुं होवाथी ), अने ते ज्ञानवडे पोतानेज मनन करवानो ( विचार करवानो ) संभव होवाथी, अने पोतानां कर्मने उत्पन्न करवाथी आ जीव—आत्माज स्वयंभू कहेवाय छे. आ स्वयंभू शब्दना अर्थ माटे श्लोकमां त्रणवार "स्वयं" अने त्रणवार भू धातु ( थी बनेला शब्द भाव–भव–ने भूति) कह्यो छे, जेथी " स्वयंभू " शब्द बनाव्यो छे. ॥७॥ आ आत्माने शस्त्रो छेदी शकतां नथी, अग्नि बाळी शकतो नथी, जळ भींजावी शकतो नथी अने पवन शोषी ( सुकावी )शकतो नथी, ॥ ८ ॥

अछेद्योऽयमभेद्योऽयं, निरूपाख्योऽयमुच्यते । नित्यः सततगः स्थाणु-रचलोऽयं सनातनः ॥ ९ ॥

सोऽक्षरः स च भूतात्मा, संप्रदायः स उच्यते । स प्राण स परं ब्रह्म, स हंसः पुरुषश्च सः ॥ १० ॥

नान्यस्तस्मात्परो द्रष्टा, श्रोता मन्ताऽपि वा भवेत् । न कर्ता न च भोक्ताऽस्ति, वक्ता नैव च विद्यते ११

अर्थः—माटे आ आत्मा छेदाय नहिं, भेदाय नहिं, उपनाम रहित ( उपाधिथी थयेलां देव–नारक इत्यादि नाम रहित ), नित्य, निरंतर ज्ञानवडे सर्व पदार्थोमां गति करनार, स्थिर, अचल, अने सनातन–शाश्वत कहेवाय छे. ॥ ९ ॥ ए आत्माज अक्षर (अविनाशी), पंचभूत रूप, संप्रदाय रूप, प्राणरूप, परब्रह्म रूप, हंस अने पुरुष ( विराट पुरुष ) कहेवाय छे. ॥ १० ॥ माटे जोनार, सांभळनार, विचार करनार, कर्त्ता, भोक्ता, के वक्ता ए आत्माथी बीजो श्रेष्ठ कोइ नथी. अर्थात् आत्माज श्रेष्ठ जोनार सांभळनार इत्यादि छे, ॥११॥ ए प्रमाणे आत्मवादीओ आत्मानुं स्वरूप माने छे.

॥ इति विविधमते आत्मतत्त्वम् ॥

## ॥ अथ कर्मतत्त्वम् ॥

कर्मवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

चेतनोऽध्यवसायेन, कर्मणा संनिबध्यते । ततो भवस्तस्य भवे, त्तदभावात् परं पदम् ॥ १२ ॥
उद्धरेद्दीनमात्मानं, नात्मानमवसादयेत् । आत्मनैवात्मनो बंधु—रात्मैव रिपुरात्मनः ॥ १३ ॥
सुतुष्टानि च मित्राणि, सुक्रुद्धाश्चैव शत्रवः । न हि मे तत्करिष्यन्ति, यन्न पूर्वकृतं मया ॥ १४ ॥

---

अर्थः— हवे कर्मवादीओ कर्मनुं स्वरूप केवी रीते प्रतिपादन करे छे ते कहेवाय छे—चेतन पोवाना अध्यवसायो ( मनना परिणामो ) वडे कर्मथी बंधाय छे, ते कारणथी आत्माने संसार प्राप्त थाय छे, अने ते कर्मबंधना अथवा संसारना अभावथी आत्मा परमपद-मोक्ष मेळवे छे, ॥१२॥ माटे आत्माए कर्मथी दीन—दुःखी एवा पोतानो उद्धार करवो, अने पोताने कर्मथी दुःखवाळो न करवो, कारणके आत्मा एज आत्मानो एटले पोतेज पोतानो बंधु छे, अने पोतेज पोतानो शत्रु छे, माटे पोतानो उद्धार करवो के अधोगति करवी पोतानाज हाथमां छे, ॥ १३ ॥ कहुंछे के—जो में पूर्वे तेवा प्रकारनुं जे सुख दुःख संबन्धि कर्म कर्युं नथी तो अति तुष्ट थयेला मित्रो अने अति क्रोध पामेला शत्रुओ मने ते सुख दुःख नहि करी शके. ॥ १४ ॥

शुभाऽशुभानि कर्माणि, स्वयं कुर्वन्ति देहिनः । स्वयमेवोपकुर्वन्ति, दुःखानि च सुखानि च ॥ १५ ॥

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ १६ ॥

स्वच्छंदतो नहि धनं न गुणो न विद्या, नाप्येव धर्मचरणं न सुखं न दुःखम् ।
आरुह्य सारथिवशेन कृतान्तयानं, दैवं यतो नयति तेन पथा व्रजामि ॥ १७ ॥

---

अर्थः—जीवो शुभ अथवा अशुभ कर्म पोतेज करे छे, अने तेथी दुःख अथवा सुख पोतेज भोगवे छे. ॥१५॥ वनमां (वनस्पतिवाळी अटवीमां), रणमां (रेतीवाळा अथवा वनस्पति विनाना उज्जड भागमां), शत्रुना समूहमां, जळमां (नदी आदिक जळाशयोमां), अग्निमां, महासमुद्रमां, अथवा पर्वतना शिखर उपर रहेलो जीव सूतो—उंघतो होय, प्रमादी (बेशुद्ध) होय, अथवा विषम स्थितिमां (भयंकर स्थितिमां) होय तोपण पूर्वे करेलां पुण्य जीवनुं रक्षण करे छे. ॥ १६ ॥ कोइ उपदेशक कहे छे के—धन, गुण विद्या, सदाचार, सुख के दुःख ए कंइ पोतानी इच्छाए जीवने कंइ करी शकतां नथी ते कारणथी (ए प्रमाणे धनादि जीवने कंइ नहिं करी शकतां होवाथी) सारथीना वशवडे हुं यमनी पालखी ( ठाठडी ) उपर बेसी दैव जे मार्गे लइ जाय ते मार्गे हुं जाउं छुं, ( अने जो धन विगेरे जीवने कंइ करी शकतां होत तो धन विगेरे घणुं मेळव्या छतां ते धन विगेरेए मने मरणथी केम न बचाव्यो ? तात्पर्य के —घणुं धन—गुण—विद्या—धर्माचरण सुख के दुःख भले मेळवो, परन्तु आ जीव पूर्वकर्मना फळथी बचतो नथी ॥ १७ ॥

यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः, फलं निधानस्थमिवोपतिष्ठते ।
तथा तथा तत्प्रतिपादनोद्यता, प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥ १८ ॥
विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः, कालो ग्रहा ईश्वरकर्म दैवम् ।
भाग्यानि कर्माणि यमः कृतान्तः, पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ १९ ॥
यत्तत्पुराकृतं कर्म, न स्मरन्तीह मानवा । स्तदीदं पांडवश्रेष्ठ ! दैवमित्यभिधीयते ॥ २० ॥

---

अर्थः—जेम जेम पूर्वकृत कर्मनु फळ निधानमां रहेला धननी पेठे प्राप्त थाय छे तेम तेम ते ते कर्मनुं आ फळ छे एम सूचवनारी जुदी जुदी बुद्धि जाणे हाथमां दीवो राखीने आवी होय तेम प्रवर्त्ते छे, अर्थात् बुद्धि पण एवीज उपजे छे के जाणे जीवने आ अमुक कर्मनुं फळ छे एम प्रगट दर्शावे छे, कारण के बुद्धि कर्मने अनुसारे होय छे. ॥ १८ ॥ विधि, विधान, नियति, स्वभाव, काळ, ग्रह, ईश्वरकृति, दैव, भाग्य, कर्म, यम, अने कृतान्त ए सर्व पूर्वे-करेला कर्मनां पर्यायनामो (एकार्थवाचक नामो) छे. ॥ १९ ॥ पूर्वश्लोकमां दैव विगेरे पूर्वकृतनां नामो छे एम कह्युं ते वातने द्रढ करवा माटे अन्य शास्त्रीय प्रमाण दर्शावे छे के—हे पांडवोमां श्रेष्ठ ! युधिष्ठिर ! जे ते पूर्वे करेला कर्मने मनुष्यो आ जन्ममां स्मरण करी शकता नथी ते (पूर्वकृतकर्म ज) " दैव " कहेवाय छे—ए कृष्णनो उपदेश छे. ॥ २० ॥

स्वभाववादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

क: कंटकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं, विचित्रतां वा मृगपक्षिणां च।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं, न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ २१ ॥

वदर्याः कंटकस्तीक्ष्ण, ऋजुरेकश्च कुंचितः। फलं च वर्तुलं तस्या, वद केन विनिर्मितं ॥२२॥

अक्षरवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

अक्षरात् क्षरितः काल–स्तस्माद्व्यापक इष्यते। व्यापकादिप्रकृत्यंतां, तां हि सृष्टिं प्रचक्षते ॥ २३ ॥

---

अर्थ:—हवे स्वभाववादीओ सुख दुःखादि विचित्रता कर्मथी नहिं पण स्वाभाविक कहेछे ते आप्रमाणे—कांटाओनी ( अणीओनी ) तीक्ष्णता कोण करे छे? अथवा मृगादि पशु अने पक्षीओमां विचित्रता ( तफावत ) कोण करे छे? एतो सर्व स्वभावथी ज थएलुं छे, कोइनी इच्छाए कंइ बनतुं नथी, तो उद्यम शा माटे करवो ? ॥ २१ ॥ तेनुं द्रष्टान्त कहे छे के–बोरडी वृक्षमां प्रयत्न सरखो कर्या छतां पण एज बोरडीनो एक कांटो सीधो अणीदार होयछे, अने एक कांटो वांको होय छे, अने फळ गोळ थाय छे ते विचित्रता कोणे बनावी ? ते कहो ॥ २२ ॥ हवे अक्षरवादीओ कहे छे के–अक्षरमांथी ( ब्रह्ममांथी ) काळ खरी पड्यो, तेथी ते काळ व्यापक गणाय छे, माटे जेनी आदिमां काळ अने अन्तमां प्रकृति छे तेने निश्चय सृष्टि कहे छे, ( पण आ सृष्टि कर्मस्वरूपवाळी छे एम नहिं ).

अक्षरवादीओमां पण केटलाएक आ प्रमाणे कहे छे—

अक्षरांशस्ततो वायु,-स्तस्मात्तेजस्ततो जलं । जलात् प्रसूता पृथ्वी, भूतानामेष संभवः ॥ २४ ॥

अंडवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

नारायणपराऽव्यक्ता-दंडमव्यक्तसंभवं । अंडस्यांतस्त्वमी भेदाः, सप्त द्वीपा च मेदिनी ॥ २५ ॥

गर्भोदकं समुद्राश्च, जरायुश्चापि पर्वताः । तस्मिन्नंडे त्वमीलोकाः, सप्त सप्त प्रतिष्ठिताः ॥ २६ ॥

---

अर्थः—अक्षरना अंशमांथी ( आकाशमांथी ) वायु उत्पन्न थयो, वायुमांथी तेज, तेजमांथी जळ, अने जळ-
मांथी पृथ्वी उत्पन्न थइ, पंचमहाभूतनी ए प्रमाणे उत्पत्ति थइ. माटे सृष्टिनी उत्पत्ति कर्महेतुथी नथी ए तात्पर्य
॥ २४ ॥ अंडवादीओ कहे छे के-नारायणथी पर ( भिन्न ) अव्यक्त ते अव्यक्तमांथी एक इंडु उत्पन्न थयुं, सृष्टि-
मां आ बधा भेद अने सातद्वीपवाळी पृथ्वी पण इंडामांथी उत्पन्न थयेली जाणवी ॥ २५ ॥ आ समुद्रो ते इंडामांनुं
गर्भजळ जाणवुं अने पर्वतो इंडामांनुं जरायु ( गर्भमां थती पातळी चर्मजाळ ) छे, एवा इंडाना मध्यभागमां सात
[1]सात लोक रहेला छे ॥ २६ ॥

---

१ भू—भुवः-स्वः-महः-जन—तप-अने सत्य ए सात लोक उपर अने तल-वितल-अतल-सुतल—रसातल
-तलातल-ने पाताल ए ७ लोक नीचे छे.

तत्रेहाद्यः स भगवा-नुषित्वा परिवत्सरं । स्वयमेवात्मना ध्यात्वा, तदंडमकरोद् द्विधा ॥ २७ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां तु, दिवं भूमिं च निर्ममे ॥ गाथार्धः ॥

अहेतुवादी आ प्रमाणे कहे छे. ---

हेतुरहिता भवन्ति हि, भावाः प्रतिसमयभाविनश्चित्राः ।
भावादृते न भाव्यं, संभवरहितं खपुष्पमिव ॥ २८ ॥

---

अर्थः—ते इंडामां ते आदि (नारायण) भगवाने संपूर्ण १ वर्ष वसीने पोते विचार करीने पोतेज ते इंडाना बे भाग कर्या ॥ २७ ॥ ते बे ककडामांथी एक ककडाने स्वर्गरूपे स्थाप्यो, अने बीजा ककडाने भूमि-पृथ्वीरूपे स्थाप्यो, माटे स्वर्ग नरकादि कर्मजन्य नथी ए तात्पर्यः ॥ दरेक समयमां विचित्ररूपे थनारा आ पदार्थो निश्चय हेतु विनाना छे, अर्थात् पदार्थोमां जे कंइ फेरफारो थाय छे तेमां कोइ हेतु-कारण नथी (स्वाभाविक रीते थया करे छे), कारणके भाव विना भाव्य न होय(एटले पदार्थ विना पदार्थपरिवर्त्तना न होय) अने भाव्य रहित भाव न होय, अने जो भाव न होय ( एटले पदार्थनो ज अभाव होय ) तो आ सघळुं भाव-भाव्य इत्यादि आकाशना पुष्पनी पेठे असत्-असंभवित छे. माटे विचित्रता ओ कर्महेतुथी नहिं पण स्वाभाविक छे ए तात्पर्य ॥ २८ ॥

नियतिवादी आ प्रमाणे कहे छे—

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः, सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाऽभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥ २९ ॥

परिणामवादी आ प्रमाणे कहे छे—

प्रतिसमयं परिणामः, प्रत्यात्मगतश्च सर्वभावानाम् ।
संभवति नेच्छयापि, स्वेच्छा क्रमवर्त्तिनी यस्मात् ॥ ३० ॥

---

अर्थः—हवे नियतिवादी कहे छे के—जे शुभ वा अशुभ अर्थ नियति बळना वशे प्राप्त थवानो होय ते शुभाशुभ अर्थ मनुष्योने अवश्य प्राप्त थाय ज. जीवो घणो उद्यम करे तो पण जे न थवानुं होय ते नज थाय, अने जे थवानु होय तेनो नाश न थाय (एटले जे थवानु होय ते अवश्य थाय ज.) माटे सर्वभावो नियतिबळने आधीन छे, पण कर्म हेतु वाळा नथी ए तात्पर्य ॥ २९ ॥ सर्व पदार्थोनो पोतपोताना स्वरूपमां रहेलो—वर्तता परिणाम दरेक समये इच्छाविना पण थाय छे, कारणके पोतानी इच्छा तो अनुक्रमे प्रवर्तनारी होय छे, माटे वस्तुना परिणाम इच्छाथी ज थाय एम नहिं. अहिं इच्छाना अभावे कर्मनो अभाव सूचववाथी वस्तुगत परिणामो कर्मथीज प्रवर्ते छे एम पण नहिं. ॥३०॥

भूतवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

सत्यं पिशाचा स्म वने वसामो, भेरीं कराग्रैरपि न स्पृशामः ।
अयं च वादः प्रथितः पृथिव्यां, भेरिं पिशाचाः किल ताडयन्ति ॥ ३१ ॥

गद्यम्—पृथिव्यपस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि, तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा मदशक्तिवच्चैतन्यं जलबुद्बुदवज्जीवा श्चैतन्यविशिष्टः कायः पुरुष इति ॥

अर्थः—ए प्रमाणे इच्छाविना थता कार्यने पण लोको इच्छावडे थयेलुं माने छे ते संबन्धमां एक अन्य ग्रन्थमांथी द्रष्टान्त आपे छे के—अमे पिशाच खरेखर वनमां रहीए छीए अने हस्ताग्रवडे-हाथवडे भेरीनो स्पर्श पण करता नथी, छतां दुनियामां (वनमां वायु आदि अन्य प्रयोगे भेरीना नाद थतां ) एवी कहेवत प्रसिद्ध थइ छे के भेरीने निश्चय पिशाचो ज वजाडे छे ए प्रमाणे परिणामवादी कहे छे. तात्पर्य ए छे के सर्व वस्तुना परिणाम स्वतः प्रवर्ते छे, छतां इश्वरेच्छादिकथी माने छे ते असत्य छे एम परिणामवादी कहे छे. ॥ ३१ ॥ हवे भूतवादी कहे छे के-पृथ्वी, जळ, अग्नि, वायु ए चार तत्त्वो छे, ते चारेना समुदायमां शरीर-इन्द्रिय-अने विषय एवां नामो पडे छे, अने जेम महुडां विगेरे सामग्रीओ एकठी थतां मद शक्ति उत्पन्न थाय छे, तथा जळमां जेम जुदा जूदा परपोटा उत्पन्न थाय छे, तेम ए तत्वोना समुदायमां जूदा जूदा जीवो उत्पन्न थाय छे. तेमां चैतन्य युक्त जे शरीर तेनी पुरुष-जीव एवी संज्ञा छे ॥ ३१ ॥

भौतिकानि शरीराणि, विषयाः करणानि च । तथापि मंदैरन्यस्य, कर्तृत्वमुपदिश्यते ॥ ३२ ॥

नास्तिकमतवाळा आ प्रमाणे कहे छे—

एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः । भद्रे वृकपदं ह्येतद्, यद्वदन्ति बहुश्रुताः ॥ ३३ ॥

---

अर्थः—ए प्रमाणे शरीर-विषय (स्पर्श रस विगेरे) अने इन्द्रियो पूर्वोक्त पृथ्व्यादि भूतनी बनेली छे तोप-
ण मंद बुध्धिवाळा जीवो कहे छे के ए बीजानां बनावेलां छे, ॥ ३२ ॥ ए बन्ने वक्तव्यमां पृथ्व्यादि महाभूतोथी
सृष्टिरचना मानी ए तात्पर्य. ॥ जेटलो आ चक्षु आदि इन्द्रियोथी देखाय छे तेटलो ज आ लोक छे. छतां बहु-
श्रुत नाम धरावनाराओ जे घणो मोटो लोक कहे छे, ते तो हे भोळी! आ [1]वरुनां पगलां सरखो कहे छे, ॥ ३३ ॥

---

१ स्वरूपवंत व्हेननी उपर आसक्त थयेला नास्तिकवादीए व्हेनने शास्त्रोनी श्रद्धाथी द्रढ थयेलो परलोक
भय दूर करवाने अनेक परिश्रमथी निष्फळ थयो त्यारे प्रत्यक्ष द्रष्टान्तथी शास्त्रो जूठां छे एवो विश्वास उपजा-
ववाने रात्रे व्हेन सहित नगरना दरवाजा बहार जइ बहु धूळवाळा मार्गमां पोतानां आंगळां पाड्यां, प्रभातमां अ-
ता आवता लोकोए अनुमानथी वात फेलावी के आजे तो नगर बहार वरु आवेलो हतो तेनां पगलां पड्यां छे,
आ फेलाती प्रसिद्धि नास्तिक वादीए पोतानी व्हेनने कही ने समजाव्युं के जेम लोको मारां आंगळांने व-
रुनां पगलां कहे छे, तेम शास्त्रकर्त्ताओ देख्या विनाज नरक स्वर्ग विगेरे परलोकनी कल्पना करे छे, इत्यादि
रीते समजावी व्हेनने विषयवासनामां आसक्त करी.

तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोगवंचनाः । अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लभ्यते ॥ ३४ ॥

अनेकवादीओ आ प्रमाणे कहे छे—

कारणानि विभिन्नानि, कार्याणि च यतः पृथक् । तस्मात्त्रिष्वपि कालेषु, नैव कर्मोऽस्ति निश्चयः ॥३५॥

अर्थः—तप करवा ए तो विचित्र प्रकारनां कष्ट छे, संयम ए तो विषय भोगथी ठगावुं छे. अने अग्निहोत्रादि क्रियाओ करवी ए बाळक क्रीडा सरखुं व्यर्थ छे, ॥ ३४ ॥ वळी अनेकवादीओ कहे छे के—जे कारणो जूदां छे, अने कार्यो पण जूदां छे, माटे त्रणे काळमां कर्म छेज नहिं ए निश्चय छे. अहिं कर्मज जो एक कारणरूप होय तो तेनाथी थयेलां कार्य पण सरखां होवां जोइए परन्तु तेम देखातुं नथी माटे कर्म छेज नहिं॥ ३५ ॥ आ वक्तव्यमां पण कर्म निषेध स्पष्ट छे.

इति कर्मतत्त्वम् ( लोकात्मकर्मतत्त्वेषु पूर्वपक्षः समाप्तः )

## । अथ स्वपक्षे ( जैनमते ) लोकादितत्त्व निर्णयः ॥

( आर्यावृत्तानि )



तेषामेवानिर्ज्ञातमसदृशं, सृष्टिवादिनामिष्टम् । एतद्युक्तिविरुद्धं, यथा तथा संप्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥
सदसज्जगदुत्पत्तिः, पूर्वस्मात्कारणात् सतो नास्ति । असतो नास्ति कर्त्ता, सदसद्भ्यां संभवाभावात्॥२॥

---

अर्थ—ए प्रमाणे पूर्वे कहेलुं जे सृष्टिवादिओनुं इष्ट–मन्तव्य जाण्या विनानुं अने विषम ( एटले पूर्वापर विरोधवाळुं ) छे. हवे जे रीते ए मन्तव्य युक्तिविनानुं छे ते रीते कहीश अर्थात् ए मन्तव्य युक्तिविनानुं केवी रीते छे ? ते कहीश. ॥ १ ॥ जो आ जगतनी उत्पत्ति मानवी होय तो ते उत्पत्ति सत् के असत्मांथी मानवी जोइए, त्यां सत् ने असत् ए बे कारणमांनुं पूर्व–प्रथम कारण जे सत् तेमांथी तो जगतनी उत्पत्ति होय नहिं ( कारण के जे सत् होय ते तो त्रणे काळमां एक सरखी स्थितिवाळुं होय तो पछी ए सत्नुं स्वरूप पलटाइने जगतरूपे केम बनी शके ? ) अने जो असत्मांथी जगतनी उत्पत्ति मानता हो तो तेम पण नथी. कारणके असत्मांथी (जे त्रणे काळमां न होइ शके तेमांथी ) तो जगतनी उत्पत्ति करनार कोइ न होय माटे जगतनी उत्पत्ति नथी सत्मांथी के नथी असत्मांथी; कारणके सत् के असत् ए बन्नेमांथी कोइपण वस्तुनी उत्पत्तिनो संभवज नथी माटे. ॥ २ ॥

यदसत्तस्योत्पत्ति,--स्त्रिष्वपि कालेषु निश्चितं नास्ति । खरशृंगमुदाहरणं, तस्मात्स्वाभाविको लोकः ॥३॥
मूर्त्ताऽमूर्त्तं द्रव्यं, सर्वं न विनाशमेति नान्यत्वम् । यद्दृश्येतत्प्रायः, पर्यायविनाशि जैनानाम् ॥ ४ ॥

---

अर्थः--पूर्व गाथामां " असतो नास्ति कर्त्ता-त्रणे काळमां अविद्यमान वस्तुनो कर्ता न होय " एम कर्युं ते द्रढ करवा माटे कहे छे के--जे असत् छे तेनी उत्पत्ति तो निश्चय त्रणे काळमां न होय, अहिं गर्दभना शींगडानुं द्रष्टान्त विचारवुं ते आ प्रमाणे--पूर्वकाळमां गर्दभने शींगडा नहोतां, वर्तमान काळमां नथी, अने भविष्यमां थवानां पण नथी, जो ए त्रणे काळमां अविद्यमान छे तो गर्दभना शींगडांनी उत्पत्ति केम होय? अर्थात् त्रणे काळमां अविद्यमान गर्दभ शींगडांनी जेम उत्पत्ति न होय तेम असत्-त्रणे काळमां अविद्यमान जगतनी उत्पत्ति पण न होय, ते कारणथी जगतती स्वभावथीज ( त्रिकालवर्त्ती ) छे, ॥ ३ ॥ ए प्रमाणे जगत् सत् छे पण कर्ता नथी तो पदार्थोनी उत्पत्ति अने विनाश जेम प्रत्यक्ष देखाय छे तेम जगतनी उत्पत्ति अने विनाश पण केम न संभवे ? आ शंकानुं निराकरण करे छे के--जगतमां रूपी अथवा अरूपी कोइ मूळ द्रव्य-मूळ पदार्थ सर्वथा विनाश पामतो नथी अर्थात् जगतमांथी ते द्रव्यनो अभाव थइ जतो नथी, तेम ते मूळ द्रव्य आखुं पलटाइने अन्यद्रव्य रूपे ( जीव पुद्गल रूपे थाय के पुद्गल जीवरूपे ) थाय एम पण बनतुं नथी माटे जेम मूळ पदार्थोनो सर्वथा विनाश के अन्यपदार्थ रूपे उत्पत्ति नथी तेम जगतनो पण विनाश के उत्पत्ति नथी. अने वस्तुना उत्पत्ति विनाश जे जाणवामां आवे छे ते प्रायः

एटले अमुक अंशे अथवा अमुक अपेक्षाए जाणवा, कारण के जैनोना सिद्धान्तमां द्रव्य-वस्तु द्रव्यथी अविनाशी अने पर्यायथी तो विनाशवंत छे कारण के--

जैन दर्शनमां द्रव्य-गुण-अने पर्याय ए त्रणमां मूळपदार्थ के जे त्रणेकाळमां अविनाशी अने गुणोने रहेवामां आश्रय भूत होय छे ते द्रव्य, ते मूळ पदार्थनो जे सदाकाळ पदार्थमां रहेवावाळो स्वभाव ते गुण, अने जे क्षणमां आवे अने क्षणमां जाय एवो स्वभाव ते पर्याय कहेवाय छे. जेम जीव ए पोते द्रव्य छे, कारणके जीवत्व कोइपण काळे जवानुं नथी तेमज ज्ञानादि गुणोनुं आश्रय स्थान छे. ए जीवना ज्ञान दर्शन चारित्र इत्यादि गुणो कहेवाय कारण के ए ज्ञानादि जीवद्रव्यमां सदाकाळ वर्तनारा होय छे, अने देवत्व नारकत्व इत्यादि पर्याय कहेवाय. अथवा ज्ञानादि गुणना ज्ञेय आश्रयि जे जुदा जुदा विशेष भेद ते पण वारंवार पलटाता होवाथी पर्याय कहेवाय. एमां जीव द्रव्य (मूळस्वरूपे अरूपी ) अविनाशी छे, ते अन्य पदार्थ अजीवरूपे पण न बदलाय, परन्तु जीव पणे कायम रही ज्ञेयभेदे ज्ञान गुणवडे वारंवार पलटातो होवाथी एटले घटज्ञानी थइने पटज्ञानी थाय वळी क्षणमां वृक्षज्ञानी थाय क्षणमां जळज्ञानी थाय क्षणमां स्वर्णज्ञानी थाय इत्यादि रीते जीव ( जीवपणे कायम रहेवा छतां पण ) पर्यायनी अपेक्षाए विनाशी कहेवाय. अथवा देव मटी नारक थाय नारक मटी तिर्यंच थाय इत्यादि रीते पण जीव ( पर्यायनी अपेक्षाए ) विनाशी कहेवाय. अहिं द्रव्य द्रव्यत्वनी अपेक्षाए अविनाशी छे माटे द्रव्यने पर्यायनी अपेक्षाए प्रायः ( एटले सर्वथा नहिं ) विनाशी कह्युं छे, सर्वथा विनाशी तो अभावरूपे थाय त्यारेज कहेवाय,

काश्यपदक्षादीनां, यदभिप्रायेण जायते लोकः । लोकाभावे तेषा, मस्तित्वं संस्थितं कुत्र ? ॥ ५ ॥
सर्वं धराम्बराद्यं, याति विनाशं यदा तदा लोकः । किं भवति बुद्धिरव्यक्त--माहितं तस्य किं रूपम् ॥६॥
यदमूर्त्तं मूर्त्तं वा, स्वलक्षणं विद्यते स्वलक्षणतः । तद्व्यक्तं निर्दिष्टं, सर्वं सर्वोत्तमादेशैः ॥ ७ ॥

---

अर्थः—जेओना मते आ जगत काश्यप अने दक्ष विगेरेनुं बनेलुं छे, तेओना मत प्रमाणे विचारीए तो जगत ज्यारे हतुंज नहि त्यारे तेओनुं अस्तित्व कये ठेकाणे हतुं ? अर्थात् काश्यप अने दक्ष क्यां रहेता हता ? तात्पर्य ए छे के काश्यप अने दक्षथी जगतनी उत्पत्ति मानवी अनुचित छे ॥ ५ ॥ हवे सांख्य जे [२] अव्यक्तथी ( प्रकृतिथी ) जगतनी उत्पत्ति माने छे तेनुं निराकरण करे छे के–पृथ्वी अने आकाश विगेरे सर्व जगत विनाश पामे छे, त्यारे चैतन्यनुं शुं थाय छे ? अने ते वखत अव्यक्तनुं स्वरूप केवुं प्रतिपादन करेलुं छे ? जो कहो के ते वखते चैतन्य अने अव्यक्त केवी रीते होय ? तेनुं स्वरूप कंइ पण कही शकाय नहि एवुं वचनातीत–वचनागोचर होय छे तो ते वात पण अयुक्त छे तेनुं कारण दर्शावे छे, ॥ ६ ॥ जे पोताना लक्षणथी–स्वभावथी । अमूर्त–अरूपी अथवा मूर्त–रूपी एवा स्वलक्षणवाळा–स्वभाववाळा पदार्थो विद्यमान छे ते ज पदार्थोने श्री सर्वज्ञोए व्यक्त ( एटले प्रगट स्वलक्षणवाळा ) कहेला छे, ( तात्पर्य आगळ कहेवाय छे-- ). ॥ ७



---

१ जुओ जगतउत्पत्ति संबन्धि पूर्वपक्षनी गाथा ४५ मी गाथामां कह्युं छे के केटलाएक आ जगत काश्यपऋषिथी अने केटलाएक ब्रह्माना पुत्र दक्ष प्रजापतिमांथी उत्पन्न थयेलुं माने छे.

२ जुओ पूर्वपक्षनी गाथा ४८ मी अने ६८ मी.

द्रव्यमरूपमरूपि च, यदिहास्ति हि तत्स्वलक्षणं सर्वम् । तल्लक्षणं न यस्य तु, तद्वन्ध्यापुत्रवद् ग्राह्यम् ८

अर्थः—अहिं द्रव्य जे रूपी अने अरूपी छे ते ( रूपीत्व अने अरूपीत्व ए सर्व ) द्रव्यनु पोतानुंज लक्षण छे, तेवुं लक्षण जे वस्तुनुं न होय ते वस्तु वंध्या-वांझणीना पुत्रनी पेठे अविद्यमान ( छे नहिं एम ) जाणवी, माटे अव्यक्त पण जो जगतनी उत्पत्ति प्हेलां अथवा जगत विनाश पाम्या बाद स्वलक्षण रहित ( वचनातीत ) हतुं एम कहो तो अव्यक्त ए कोइ वस्तुज न होइ शके, अने जो अव्यक्त ए काइ वस्तुज न होय तो अव्यक्तमांथी जगतनी उत्पत्ति मानवी, अथवा जगत विनाश पाम्या बाद केवळ अव्यक्त रहे छे एम मानवुं ते कोइ रीते युक्त नथी. माटे कहो के जगतना अभाव वखते चैतन्य अने अव्यक्तनुं स्वरूप केवुं होय छे ? रूपी होय छे के अरूपी होय छे ? जो कहो के न रूपी के न अरूपी एवुं होय छे तो ए चैतन्य अने अव्यक्त रूपी के अरूपी रूप स्वलक्षण रहित होवाथी ए बन्ने कंइज वस्तु नथी तो तेनाथी थती जगतनी उत्पत्ति पण नथी ए प्रमाणे सांख्य दर्शनमां जेओ प्रकृतिथी ( एटले [1]अव्यक्तथी जगतनी उत्पत्ति माने छे तेओना अभिप्रायनुं निराकरण कर्युं.

१ सत्वगुण, रजोगुण, अने तमोगुण ए त्रण गुणनी समावस्था एटले लगभग तुल्य होय ते प्रकृति कहेवाय ए प्रकृतिनां अव्यक्त अने प्रधान एवां बे पर्याय नाम छे. ते प्रकृतिमांथी जगतनी उत्पत्ति अनन्तर पणे नहिं पण परंपराए थयेली छे, कारण के प्रकृतिथी प्रथम चैतन्य उत्पन्न थयुं, ते चैतन्य ( बुद्धिमांथी ) स्पर्शादि १६ नो गण उत्पन्न थयो, अने ए १६ मांना जे स्पर्शादि पांच तेमांना एकेकमांथी एकेक भूत ( पृथ्व्यादि तत्वनी ) उत्पति थइ अने ए पांच महाभूतमांथी सृष्टिनी उत्पत्ति थइ. ॥

यद्युत्पत्तिर्न भवति, तुरगविषाणस्य खरविषाणाग्रात् । उत्पत्तिरभूतेभ्यो, ध्रुवं तथा नास्ति भूतानाम् ॥९॥
तत्र व्यक्तमलिंगा--दव्यक्तादुद्भविष्यति कदाचित् । सोमादीनां तनुसंभवोऽस्ति यदि नास्ति भूतानि ॥१०॥

अर्थ—वळी अव्यक्तमांथी चैतन्य अने चैतन्यमांथी उत्पन्न थयेला स्पर्शादि १६ मांना पांचमांथी जे पांच महाभूतोनी उत्पत्ति मानी ते पण अयुक्त छे, कारणके जो गर्दभना शिंगडानी अणीमांथी घोडाना शिंगडानी उत्पत्ति नथी थती एटले जो असत्मांथी असत्नी उत्पत्ति न होय तो ( पूर्व श्लोकमां वंध्यापुत्र तुल्य साबीत करेला असत् अव्यक्त अथवा चैतन्यमांथी ) भूतोनी ( पृथ्व्यादि सत्नी ) उत्पत्ति तो अवश्य न होय, अहिं तात्पर्य ए छे के जो असत्मांथी स्वजातीय असत्नी उत्पत्ति न थइ शके तो परजातीय सत्नी ( भूतोनी ) उत्पत्ति तो संभवेज केम ? जेम नींबमांथी नींब न उत्पन्न थाय तो आम्रवृक्ष तो निश्चय न ज उत्पन्न थाय इति भावार्थः ॥९॥ वळी आ भूतोनी उत्पत्तिना संबधमां एम पण कहेवानु छे के लिंग ( उपलक्ष्यमाण कार्य—धर्म ) रहित एवा अव्यक्तमांथी व्यक्त ( पंचभूतादि ) उत्पन्न थतुं होय तो सोमादिकना शरीरनी ( जीवनां शरीरोनी ) उत्पत्ति जो के पंचभूत न होय तो पण होइ शके. अर्थात् अव्यक्तमांथी ( अनुक्रमे चतन्य अने तेमांथी अहंकार अने तेमांथी स्पर्शादि अने तेमांथी ) व्यक्त एवां पंचभूत जो उत्पन्न थइ शकतां होय तो अव्यक्तमांथी परभार्यां व्यक्त एवां जीव शरीरो केम उत्पन्न न थाय ? के जेथी पंचभूत उत्पन्न थया बाद पंचभूतमांथी ज शरीरोत्पत्तिं मानवी पडे ?

असति महाभूतगणे, तेषामेव तनुसंभवो नास्ति । पशुपतिदिनपतिवत्, सोमांडपितामहहरीणाम् ॥११॥
बुद्धिमनोभेदानां, देहाभावे च संभवो नास्ति । इहापोहाभावस्तदभावे संभवाभावः ॥ १२ ॥

अर्थः—पूर्वश्लोकमां कह्या प्रमाणे पंच महाभूतनो समुदाय न होय तो * पशुपति ( महादेव ) दिनपति ( सूर्य )नी पेठे ते सोम अंड ब्रह्मा अने विष्णुना शरीरनो पण संभव न होय. ॥ ११ ॥ अने शरीरने अभावे बुद्धिना भेद अने मनना भेद ( जूदी जूदी बुद्धि अने जूदा जूदा विचारवाळा मन ) नो पण संभव न होय, अने बुद्धि तथा मनना अभावे इहापोह (विचारणा) पण न होय अने जो आ करवा योग्य छे माटे करुं इत्यादि विचारणा पण न होय तो वस्तुनी उत्पत्तिनो पण अभाव थाय. कारणके कोइ वस्तु उत्पन्न करवा माटे प्रथम आ उत्पन्न करवा योग्य छे के नहिं एवो इहापोह (–तर्क वितर्क रूप ज्ञान ) अवश्य होय. ॥ १२ ॥

* महाभूत गण एटले महादेवनो भूतादिगण ज्यां न होय त्यां महादेवनुं शरीर एटले महादेव न होय, अने महाभूतगण एटले जीवादिगण नहि होते प्रलयकालमां तेनो प्रकाशक सूर्य पण न होय तेम पृथ्व्यादि तत्वरूप महाभूतगण न होय तो सोमादिकनां शरीरनो संभव पण न होय एम एक नैयायिक पासे पूछवाथी समजाय छे.

१ नैयायिको कहे छे के ज्ञान–चिकिर्षा ( करवानी इच्छा )–अने प्रयत्न ( अर्थात् जानाति इच्छति अने यतते ) ए त्रणथी वस्तुनी उत्पत्ति छे. त्यां शरीराभावे बुद्धि अने मननो अभाव होवाथी इहापोह रूप ज्ञाननो (जानाति नो) अभाव आ श्लोकमां सिद्ध कर्यो.

तदभावेऽस्ति न चिंता, चिंताभावे क्रियागुणो नास्ति । कर्तृत्वमनुपपन्नं, क्रियागुणानामसंभवतः ॥१३॥
तेन कृतं यदि च जगत्, स कृतः केनाकृतोऽप्यबुद्धिर्वः । विज्ञेयः सत्येवं, भवप्रपंचोऽपि तद्वदिह ॥१४॥

अर्थः—ए प्रमाणे वस्तु उत्पत्तिनो अभाव होते छते ते वस्तु उत्पन्न करवानी चिंता-इच्छा पण न होय कारण के जो उत्पत्तिज न होय तो ते वस्तुने उत्पन्न करवानो विचार पण केम होय ? अथवा बीजो अर्थ विचारतां " तदभावे " एटले बुद्धि अने मनोभेदना अभावे इच्छा न होय, कारणके इच्छा बुद्धि अने मनना संयोगे उत्पन्न थाय छे. ए प्रमाणे बन्ने रीते चिंता-[1]इच्छानो अभाव थतां क्रियागुण एटले ते वस्तुनी उत्पत्तिमां प्रयत्न करवो तेपण न होय, अने क्रियागुणना ([2]प्रयत्नना) अभावे कर्त्तापणुं पण सिद्ध न थयुं, माटे ज्यां कर्तानीज सिद्धि नथी त्यां जगतनो कर्ता ईश्वरादि छे एम केम कहेवाय ? ॥ १३ ॥ वळी जो ते ईश्वरादिके जगत बनाव्युं, तो ते ईश्वरादिकने कोणे बनाव्यो ? जो कहो के ईश्वरादिकने कोइए बनाव्यो नथी तो एम कहेवामां तमारुं अज्ञान छे, कारणके कर्त्ता विना जो जगत न बनी शके तो कर्ता विना ईश्वर केम बने ? जो कहो के ईश्वर तो कर्त्ता विना पण होइ शके तो ए प्रमाणे होते छते अहिं आ संसारनो प्रपंच पण तेवोज ( कर्ता विनानो ज ) जाणवो.

१-२ आ श्लोकमां इच्छानो (इच्छति नो) अने प्रयत्ननो (यततेनो) पण अभाव करी उत्पत्तिनो अभाव सिद्ध कर्यो.

अभ्युपगम्येदानीं, जगतः सृष्टिर्वदामहे नास्ति । पुरुषार्थैः कृतकृत्यो, न करोत्यासो जगत् कलुषम् ॥१५॥
अपकारः प्रेताद्यैः, कस्तस्य कृतः सुरादिभिः किंवा । संयोजिता यदेते, सुखदुःखाभ्यामहेतुभ्याम् ॥ १६॥
तुल्ये सति सामर्थ्ये, किं न कृतो वित्तसंयुतो लोकः । येन कृतो बहुदुःखो, जन्मजरामृत्युपथि लोकः १७

---

अर्थः—ए प्रमाणे ( १ थी १४ सुधीना श्लोकमां कह्या प्रमाणे जगतनी उत्पत्ति कोइ पण पदार्थमांथी नथी थइ एम ) अंगीकार करीने–सिद्ध करीने हवे अमे एम कहीए छीए के जगतनी उत्पत्ति कोइमांथी नथी एटलुंज नहिं पण आ जगतनी रचना पण (एटले इश्वरे बनाव्युं एम पण)नथी, कारण के पुरुषार्थो वडे ( करवा योग्य कृत्योवडे ) कृतार्थ थयेल एवा आप्त–सर्वज्ञ आवा मलिन जगतने न बनावे ॥ १५ ॥ वळी प्रेत विगेरेए ( भूतादिकोए ) ते जगतकर्त्तानो शुं अपराध कर्यो छे के जेथी तेओने उतरता दरज्जाना बनावी विना कारणे पाताळमां राखी दुःखमां जोडया, अने देवादिके ( सूर्यादि विमानवासीओए ) तेनो शुं उपकार ( अहिं " किं " एटले " शुं उपकार " अर्थ करवो ) कर्यो छे के जेथी तेओने उत्तम बनावी स्वर्गलोकमां राखी विना कारणे सुखमां जोडया ! ॥ १६ ॥ जो कर्त्तानुं सामर्थ्य सर्वने बनाववामां एक सरखुं हतुं तो सर्व लोकने धनवान केम न कर्या ? के जेथी करीने जन्म जरा अने मृत्युना मार्गमां लोकने अति दुःखवाळा कर्या !

यदि तेन कृतो लोको, भूयोपि किमस्य संक्षयः क्रियते। उत्पादितः किमर्थं, यदि संक्षेपणीय एवासौ ॥१८॥
कः संक्षिप्तेन गुणः, को वा सृष्टेन तस्य लोकेन। को वा जन्मादिकृतं, दुःखं संप्रापितैः सत्त्वैः ॥ १९ ॥
भूतानुगतशरीरः, कुंभाद्यं कुंभकृद्यथा कृत्वा। असकृद्भिनत्ति तद्वत्, कर्त्ता भूतानि निस्त्रंशः ॥ २० ॥
भवसंभवदुःखकरं, निःकारणवैरिणं सदा जगतः। कस्तं व्रजेच्छरण्यं, सूरिः श्रेयोर्थमतिपापम् ॥ २१ ॥

---

अर्थः—जो आ जगत् ते ईश्वरे कर्युं होय तो फरीथी आ जगतनो संहार शामाटे करे छे ? कारणके आ जगत जो संहारवा योग्य ज हतुं तो प्रथमथी उत्पन्न ज शामाटे कर्युं ? ॥१८॥ अथवा जगतनुं संहरण करवामां अने बनाववामां ईश्वरने शुं गुण-फायदो थाय छे ? अथवा जन्म जरा अने मरणना दुःख प्रत्ये पमाडेला प्राणीओ वडे ईश्वरने शुं गुण थाय छे ! ( अर्थात् प्राणीओने जन्मादिकनां दुःख आपवामां ईश्वरने शुं लाभ थाय छे ? ) ॥ १९ ॥ पंचभूतवडे व्याप्त थयेला शरीरवाळो कुंभार जेम वारंवार घट विगेरे करीने भागी नांखे छे तेनी पेठे प्राणीओनो बनावनार ए ईश्वर पण वारंवार प्राणीओने बनावी संहार करे तो ते निर्दय कहेवाय ॥ २० ॥ भवभ्रमणथी उपजता दुःखने उत्पन्न करनार अने हंमेशां जगतना निष्कारण वैरी एवा ते इश्वरना शरणे कोण जाय ! जेम एवा कोण आचार्य पोताना कल्याण माटे अतिपापीने शरणे जाय ! (तेम निष्कारण वैरी एवा इश्वरने शरणे कोण जाय!) ॥ २१ ॥

स्वकृतं जगत्क्षपयतः, तस्य न बंधोऽस्ति बुद्धिरन्येषाम । किं न भवति पुत्रवधे, बन्धः पितुरुग्रचित्तस्य २२
जगतः प्रागुत्पत्ति-र्यदि कर्तुर्विग्रहात्कथं तद्वत् । अधुना न भवति तस्यैव; विग्रहात्संभवस्तस्य ॥ २३ ॥

ग्रंथकार जगत उत्पत्तिनी चर्चानो उपसंहार करी निर्णय दर्शावे छे—

त्रिविधासु यथा योनिषु, सत्त्वानां साम्प्रतं समुत्पत्तिः । नित्यं तथैव सिद्धिः, प्राहुर्लोकस्थितिविधिज्ञाः २४

---

अर्थः---केटलाएकनी बुद्धि एवा प्रकारनी छे ( अर्थात् बीजा एम कहे छे के )-पोताना बनावेला जगतनो पोते ज विनाश करनार होय तो तेने बंध-दोष न होय, तो अमे एम पूछीए छीए के पोतेज उत्पन्न करेला पुत्रनो वध करवामां उग्र-क्रूर चित्तवाळा पिताने शुं दोष न होय ? अर्थात् जो पुत्रवध करनार पिता दोषीत गणाय तो जगत् संहारक ईश्वर पण दोषीत ज गणाय. ॥ २२ ॥ वळी कर्ताना-ईश्वरना शरीरमांथी जेम पूर्वे जगतनी उत्पत्ति थइ तो तेवी रीते ते ईश्वरना शरीरमांथी तेनी-जगतनी उत्पत्ति हमणां पण केम थती नथी ? ॥ २३ ॥ माटे उपर कह्या प्रमाणे सर्व विचारतां अंतिम तात्पर्य एज आवे छे के-जेम वर्तमान काळमां जूदी जूदी योनीओमां जूदा जूदा जीवोनी उत्पत्ति छे तेवीज उत्पत्ति निरन्तर ( भूत-भविष्यमां ) पण छे, एम जगत्स्थितिनी विधि जाणनारा आप्त-पुरुषो कहे छे ॥ २४ ॥

एवं विचार्यमाणाः, सृष्टिविशेषाः परस्परविरुद्धाः। हरिहरविचारतुल्या, युक्तिविहीनाः परित्याज्याः २५

मुक्तो वाऽमुक्तो वा-ऽस्ति तत्र मूर्त्तोऽथवा जगत्कर्त्ता।
सदसद्वापि करोति हि, न युज्यते सर्वथा करणम् ॥ २६ ॥

---

अर्थः—ए प्रमाणे विचार करतां जगतनी उत्पत्तिना जूदा जूदा मतभेद प्रथम दर्शावेला विष्णु अने महादेवमां देवत्वना मतभेद मुजब परस्पर विरुद्ध अने युक्तिरहित छे माटे त्याग करवा योग्य छे. अर्थात् पहेला प्रकरणमां जेम विष्णु अने महादेवमां देवपणाना मतभेद परस्पर विरुद्ध अने युक्तिरहित दर्शाव्या तेम आ जगतनी उत्पत्तिना मतभेद पण तेवाज जाणवा ॥२५॥ माटे जगतनो बनावनार मुक्त होय के अमुक्त होय रूपी होय, के अरूपी होय, अने विद्यमान जगत बनावे के अविद्यमान बनावे पण सर्वथा जगतनुं बनाववापणुं ज ( अने उपलक्षणथी बनवा पणुं पण) घटतुं नथी तो पछी जगतनो बनावनार मुक्त छे के अमुक्त इत्यादि विवादथी शुं ! ॥ २६ ॥

मुक्तो न करोति जगन्न कर्मणा बध्यते हि वीतरागः । रागादियुतः सतनु–र्निबध्यते कर्मणाऽवश्यम् २७
ज्ञानचरित्रादिगुणैः, संसिद्धाः शाश्वताः शिवाः सिद्धाः । तनुकरणकर्मरहिता, बहवस्तेषां प्रभुर्नास्ति २८॥

अर्थः—ईश्वर तो जे मुक्त ( सर्व कर्मरहित ) होय तेज कहेवाय, अने जे मुक्त होय ते जगतने बनावे नहि. आ सिद्धान्त सांभळीने कोइ कहे के जो सकर्म होय तेज जगत बनावे तो ईश्वरे पण प्रथम सकर्म थइने पछी जगत उत्पत्ति करी एम मानवामां शुं विरोध छे ? त्यारे ग्रन्थकार कहे छे के ईश्वर तो वीतराग ( सर्वथा राग रहित ) होय अने जे वीतराग होय ते कर्मवडे बंधाय नहि परन्तु जे राग द्वेष आदि सहित अने शरीरधारी जीव होय तेज अवश्य कर्मवडे बंधाय छे तो पछी ईश्वर सकर्म थइने जगत बनावे ए केम संभवे ! ॥ २७ ॥ हवे ईश्वर कोण कहेवाय ? ते ग्रन्थकार दर्शावे छे के--जे जीवो ज्ञान अने चारित्र विगेरे आत्मगुणोवडे सम्यक् प्रकारे सिद्ध थयेला होय ( एटले ज्ञानादि आत्मगुणोने संपूर्ण प्राप्त कर्या होय ), तथा सिद्धिस्थानमां सदाकाळ ( अनंतकाळ ) अने उपद्रव रहित पणे रहेला होय, तथा शरीर इन्द्रिय अने कर्म ए त्रणे रहित होय ते ईश्वर कहेवाय, एवा ईश्वरो--सिद्धो घणा छे ( आथी ईश्वर एकज छे ए मन्तव्य पण असत्य जणाव्युं ). अने ते सिद्धोमां कोइ म्होटो ( मोटो नानो ] नथी, परन्तु सर्वे सिद्धो सरखा छे, अथवा ए सिद्धोना करतां बीजो कोइ म्होटो नथी के जेने सर्वोपरि ईश्वर तरीके स्वीकारीए, म्होटामां मोटा आत्मा तो ए सर्व सिद्धोज छे, तो पछी जगतनो कर्त्ता ईश्वर एकज छे ते कयो? ॥२८॥

१ अहिं छंदोभंग थाय छे. "हि वीतरागः" ने बदले विगतरागः होय अथवा हि गतरागः होय तो छंदोभंग न थाय

कर्मजनितं प्रभुत्वं; संसारे क्षेत्रतश्च तद्भिन्नम् । प्रभुरेकस्तनुरहितः, कर्त्ता च न विद्यते लोके ॥ २९ ॥

अर्थः—हवे पूर्वगाथामां कह्युं के सिद्धोमां कोइ एक प्रभु (म्होटो) नथी, अथवा सिद्धोनो कोइ (प्रभु उपरी–स्वामी) नथी तेनुं कारण आ श्लोकमां दर्शावे छे के--प्रभुपणुं (म्होटा नानापणुं) तो कर्मथी उत्पन्न थयेलुं अने ते संसारमां होय छे पण कर्म रहित सिद्धोमां एक म्होटो अने एक न्हानो होवामां शुं कारण छे ? वळी ते प्रभुत्व (संसारीपणामांनु कर्मजन्य प्रभुत्व) क्षेत्रथी जूदुं जूदुं होय छे, एटले राजानुं तेना देश जेटलुं, वासुदेवनुं त्रिखंड जेटलुं, चक्रवर्तीनुं ६ खंड जेटलुं, देवेन्द्रनुं ते देवलोकादि जेटलुं ए प्रमाणे अनेक प्रकारनुं छे. आ सर्व प्रभुत्व सांसारिक अने कर्मजन्य छे, माटे आ लोकमां--संसारमां शरीर रहित एवो एक प्रभु--ईश्वर अने ते जगतनो पण बनावनार होय ते विद्यमान नथी. कहेवानु तात्पर्य ए छे के सिद्धमां तो कोइ जगतकर्त्ता एक प्रभु संभवतो नथी, अने संसारमां जोइए तो तेमां पण क्षेत्रादिभेदे अनेक प्रभु कर्मजनित होवाथी शरीर रहित एक प्रभु जगतकर्ता जणातो नथी, जेथी जगतकर्त्ता प्रभु नथी मुक्तिमां के नथी संसारमां, माटे जगतकर्ता ज नथी. ॥ २९ ॥

अवगाहाकृतिरूपैः, *स्थैर्यभावेन शाश्वते लोके। कृतकत्वमनित्यत्वं, मेर्वादीनां न संभवति ॥ ३० ॥
गुणवृद्धिहानिचित्रा, कैश्चिन्न मही कृता न लोकश्च। इति सर्वमिदं प्राहुः, त्रिष्वपि लोकेषु सर्वविदः ॥३१॥

---

अर्थ—शाश्वते (त्रिकाळवर्त्ती) एवा आ लोकमां अवगाह (उंचाइ जाडाइ लंबाइ ने प्होळाइ), आकार, अने रूपवडे स्थिर होवाथी एटले अवगाहादिक त्रणे काळमां एक सरखा होवाथी मेरुपर्वत विगेरेनी उत्पत्ति के विनाश संभवतो नथी. अथवा बीजी रीते आ श्लोकनो अर्थ आ प्रमाणे—अवगाह आकृति ने रूपवडे स्थिर होवाथी शाश्वत एवा आ लोकमां मेरुपर्वत विगेरेनी उत्पत्ति के विनाश संभवतो नथी, माटे मेरु विगेरेनो अथवा जगतनो कर्ता मानवो-योग्य नथी. ॥ ३० ॥ वळी छ गुणवृध्धि अने छ गुणहानि वडे विचित्र एवी आ पृथ्वी अने लोक कोइए बनावेल नथी, ए प्रमाणे त्रणे लोकमां आ दृश्य के अदृश्य सर्वे पदार्थो छ गुणवृध्धि अने छ गुणहानि वडे विचित्र छे अने कोइए बनाव्या नथी एम सर्वज्ञो कहे छे ॥ ३१ ॥

---

१ *छंदोभंग थवाथी स्थिर स्वभावेन संभवे. छ गुणवृध्धि एटले जैन दर्शनमां मानेली अनंतभागवृद्धि-असंख्यभागवृध्धि-संख्यभागवृध्धि-संख्यगुणवृध्धि-असंख्यगुणवृध्धि-अने अनन्तगुणवृध्धि. ए प्रमाणे ६ गुणहानि पण जाणवी.

अद्धाचक्रमनीशं, ज्योतिश्चक्रं च जीवचक्रं च । नित्यं पुनंति लोका—नुभावकर्मानुभावाभ्याम् ॥ ३२ ॥
चन्द्रादित्यसमुद्रा—स्त्रिष्वपि लोकेषु नातिवर्त्तन्ते । प्रकृतिप्रमाणमात्मा—यमित्युवाचोत्तमज्ञानम् ॥ ३३ ॥

सर्वाः पृथिव्यश्च समुद्रशैलाः, सस्वर्गसिद्धालयमन्तरीक्षम् ।
अकृत्रिमः शाश्वत एष लोकः, अतो बहिर्यत्तदलौकिकं तु ॥ ३४ ॥ उपजातिवृत्तम् ॥

---

अर्थ:—वळी कोइपण नेता विनानुं आ काळचक्र ज्योतिश्चक्र अने जीवचक्र (चक्र—भेद—समुदाय) लोकस्वभाव (कुदरत) अने कर्म ए बेना प्रभावथी हंमेशां जगतने पवित्र करे छे, अर्थात् ए त्रणे जगतमां प्रवर्ते छे, ॥ ३२ ॥ आ त्रणे लोकमां चन्द्र सूर्य अने समुद्र इत्यादि पोत पोतानी मर्यादानुं उल्लंघन करता नथी, ए स्वाभाविक अनतिवर्तनज आ आत्मा स्वभावसिद्ध छे एवा प्रकारना उत्तम ज्ञानने जणावे छे॥३३॥सर्व(साते)पृथ्वीओ, सर्वे (असंख्य समुद्रो ) अने सर्वे ( अनेक ) पर्वतो तथा स्वर्गलोक, सिद्धिस्थान ( ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी--सिद्धशिला ), अने आकाश ( लोकाकाश ) ए सर्व मळीने " लोक" कहेवाय छे, अने ते लोक कोइनो बनावेलो नहि एवो अने शाश्वत ( त्रिकालवर्ती ) छे. ए लोकथी बहार जे कंइ ( केवळ आकाश द्रव्य ) छे, ते " अलोक " कहेवाय छे ॥ ३४ ॥

संक्षेपथी कर्मतत्व कहे छे—

प्रकृतीश्वरौ विधानं, कालः सृष्टिर्विधिश्च दैवं च । इति नामधनो लोकः, स्वकर्मतः संसरत्यवशः ॥ ३५ ॥
कर्मानुभावनिर्मित–नैकाकृतिजीवजातिगहनस्य । लोकस्यास्य न पर्यव--सानं नैवादिभावश्च ॥ ३६ ॥

अर्थः—-हवे कर्मनुं स्वरूप अति संक्षेपमां कहे छे,--प्रकृति, ईश्वर, विधान, काळ, सृष्टि, विधि, अने दैव एवा नामवाळो आ लोक छे, कारण के पोताना कर्मथी परवश--पराधीन थयो छतो आ लोक ( जीवसमुदाय ) चारे गतिमां रखडे छे. तात्पर्य ए छे के कर्म ईश्वर विधि ए नामो लोकनां छे एम कहीये तोपण चाले, कारण के अहिं लोक एटले जीवसमूह ते पोताना कर्मथी ज्यां परिभ्रमण करे छे, ते चार गतिरूप लोकज कहेवाय छे.॥३५॥कर्मना प्रभावथी निर्माण थयेली अनेक आकृतिवाळी ( संक्षेपे ८४००००० चोरासोलाख अने विस्तारथी [1]असंख्य) जीवयोनिओ ( जीवोने उपजवानां स्थानो) वडे अथवा (जाति एटले जन्म अर्थ होवाथी) अनेक आकारवाळा जीवोना जन्म वडे, अथवा ( जातिने भेदवाचक गणतां ) अनेक आकारवाळा जीवनी जातिओ एटले जीवभेदोवडे गहन ( अतिशय भरेला ) एवा आ लोकनो अन्त नथी (एटले आ लोकनो कोइपण काळे अभाव थवानो नथी ) तेम आदि भाववाळो पण नथी (एटले अमुक काळे बन्यो एम पण नथी)॥३६॥

१ एक योनि ( उत्पत्तिस्थान ) अंगुलना असंख्यातमा भाग जेवडुं होय तेथी लोकमां असंख्य योनिओ होय.

तस्मादनादिनिधनं व्यसनोरुभीमं, जन्मारदोषद्दढनेम्यतिरागतुम्बम् ।
घोरं स्वकर्मपवनेरितलोकचक्रं, भ्राम्यत्यनारतमिदं किमिहेश्वरेण ॥ ३७॥ उपजाति० ॥

अर्थः—ते कारणथी अनादि अनन्त स्थितिवाळुं कष्टवडे अति भयंकर अने अनेक जन्म रूपी आराओ वाळुं दोप (द्वेप) रूपी मजबूत नेमि ( पैंडा उपरनो मोटो लोखंडनो गोल पाटो के जे पैंडाने चारे बाजूथी मजबूत बांधी राखे छे ते वाट) वाळुं, अति राग रूप नाभि वाळुं, घोर, अने पोताना करेला कर्म रूपी पवन वडे प्रेरायलुं(चाली रहेलुं) आ लोक(संसार) रूपी चक्र निरन्तर परिभ्रमण करे छे, तो अहिं ईश्वरवडे शुं? अर्थात् पूर्वोक्त स्वरूप वाळो लोक कर्म प्रभावेज चाल्या करे छे, पण कोइ ईश्वर रूप अधिपतिनी प्रेरणाथी चाले छे एम नहिं ज ॥ ३७ ॥

इति श्री परमपूज्य श्रीमद् हंसविजयजीत् प्रसादेन
पं—चंदुलाल कृतं श्रीलोकतत्त्वनिर्णयस्य
॥ गूर्जरभाषान्तरं समाप्तम् ॥

१४४४ ग्रन्थप्रासादसूत्रधार श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरविरचित,

# ॥ श्री लोकतत्त्वनिर्णय ग्रंथः समाप्तः ॥

"आ पुस्तक श्री जैन एडवोकेट" प्रीन्टींग प्रेसमां शा० चीमनलाल गोकलदासे छाप्युं घीकांटा वाडी अमदावाद.